जनवरी - मार्च 1992

वर्ष : 24 अंक : 1

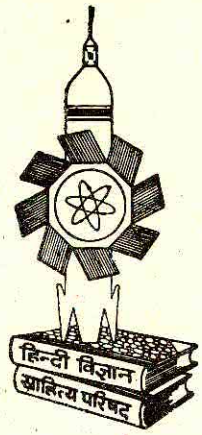

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार प्रसार हेतु परिषद नियमत रूप से त्रैमासिक पत्रिका **वैज्ञानिक** का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं **वैज्ञानिक** पत्रिका का शुल्क (रु.):

	परिषद सदस्यता			वैज्ञानिक शुल्क 5 रु. प्रति	
	एक वर्ष	आजीवन	प्रवेश शुल्क	एक वर्ष	तीन वर्ष
व्यक्तिगत	15	100	1	15	40
संस्थागत	25	250	1	25	70

1. वैज्ञानिक विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
2. वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक निःशुल्क भेजी जाती है।
3. सभी शुल्क **हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से **डिमांड ड्राफ्ट** (बम्बई) अथवा **भारतीय पोस्टल आर्डर** द्वारा ही भेजें। **कृपया बम्बई से बाहर के चैक व मनीऑर्डर द्वारा शुल्क** न भेजें।

'वैज्ञानिक' में विज्ञापन

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में **वैज्ञानिक** अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सें.मी. x 21 सें.मी है।

विज्ञापन की दरें	:	**(एक प्रति के लिए)**
अंतिम आवरण	:	रु.2,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	:	रु.2,000/-
पूरा पृष्ठ	:	रु.1,500/-
आधा पृष्ठ	:	रु.800/-

अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1991

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) **वैज्ञानिक** कार्यालय को भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनाएं और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

पुरस्कार : प्रथम रु.1500/-, द्वितीय रु.1000/-, तृतीय रु.500/-

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो **विशेष पुरस्कार** - प्रत्येक रु.300/- के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

अंतिम तिथि : 31 अगस्त 1991

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं **वैज्ञानिक** की संपत्ति होंगी। **वैज्ञानिक** से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। **वैज्ञानिक** हेतु अन्य रचनाएं भी आमंत्रित हैं। सभी प्रकाशित रचनाओं पर मानदेय दिया जाता है।

पत्राचार का पता : श्री. ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी, सचिव, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद, परमाणु ईंधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, बम्बई - 400 085.

वैज्ञानिक

वर्ष : 24 • अंक : 1
जनवरी-मार्च 1992

- व्यवस्थापन मंडल -
डा. शिव प्रकाश गर्ग
श्री ज्ञानोत्तम लाल गोस्वामी
श्री ललित कुमार
श्री राम निवास आर्य

- संपादन मंडल -
डा. जनार्दन स्वरूप
डा. गोविन्द प्रसाद कोठियाल
डा. कैलाश चन्द्र भल्ला
डा. दुर्गा प्रसाद पांडे

- शुल्क -
भारत में

	संस्थागत	व्यक्तिगत
क वर्ष	25 रु.	15 रु.
न वर्ष	70 रु.	40 रु.

- विदेश में -
(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

	संस्थागत	व्यक्तिगत
क वर्ष	45 रु.	35 रु.
न वर्ष	125 रु.	95 रु.

अनुक्रमणिका

लेख		पृष्ठ सं.
1.	संपादकीय	3
2.	वेशरम (आईपोमिया कार्निया) द्वारा कागज निर्माण ..... - श्री रुद्र नारायण शुक्ल	5
3.	ज्यामितीय संस्कार ..... - श्री गोविन्द प्रसाद शर्मा	9
4.	कम्प्यूटर गणित में आंकड़ा प्रदर्शन ..... - श्री श्याम लाल धीमान	15
5.	बेर की बहु उपयोगी फसल ..... - डा. आर.के.जैन एवं आर.के.चौधरी	18
6.	भूकंप : एक विवेचन ..... - डा. वासुदेव प्रसाद यादव	21
7.	महारोग एड्स से बचाव ..... - डा. प्रेमचन्द्र स्वर्णकार	25
8.	लू लगने के कारण और निवारण ..... - श्री वीरेन्द्र शर्मा	28
9.	कवकों की आर्थिकी ..... - श्री विजय उमराव	32
10.	एंटी - बायोटिक्स ..... - श्री सत्यदेव पाण्डेय	37
11.	किसे हम जीवित कहें ? ..... - डॉ. विनोद कुमार गुप्त	40
१२.	ताप - विद्युत गृह हेतु जलधारा ..... - श्री उदयवीर सिंह	43
13.	भूत का रहस्य ..... - श्री मेघराज मित्र और साथी	48
14.	बाल विज्ञान ..... दूरदर्शन	50

¤ "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

¤ "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।

¤ "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय बम्बई के न्यायालय में ही होगा ।

कार्यालय :
"वैज्ञानिक" हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कॉम्प्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र,
बंबई - 400 085.

15. **टिप्पणी**

1. **रान्यूए (आर. एन. ए.) आज का स्वविभाजन** 5
2. **सौर मंडल के अज्ञात ग्रह** 5
3. **प्रकृति की सुन्दर देन गुलाब** 5
4. **हिप्नोपीडिया यानि सोते-सोते पढ़िए** 5
5. **जैव नियंत्रण** 5
6. **खंडसारी उद्योग में खांड की प्राप्ति** 5
7. **जीवाणु खाद** 6
8. **क्या हिमालय उठ रहा है ?** 6

16. **कुछ फूल कुछ कांटे** 6

"वैज्ञानिक" के स्वामित्व का ब्योरा

फार्म IV

1.	प्रकाशन स्थल	:	भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
2.	प्रकाशन	:	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डा. शिव प्रकाश गर्ग
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डा. शिव प्रकाश गर्ग
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	धात्विकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
5.	संपादक का नाम	:	डा. जनार्दन स्वरूप
	राष्ट्रीयता	:	भारतीय
	पता	:	स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.
6.	कुल पूंजी के १% से अधिक के भागीदारों के नाम और पते	:	हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद पुस्तकालय एवं सूचना प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रांबे, बम्बई - 400 085.

मैं, डा. शिव प्रकाश गर्ग, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सही है।

- डा. शिव प्रकाश गर्ग
व्यवस्थापक, "वैज्ञानिक"

संपादकीय

मानसिक तनाव

आर्थिक क्षेत्र में संपन्न देशों की हू-ब-हू नकल करने से हमारे देश में संपन्नता बढ़ी है या नहीं, यह तो एक विवादास्पद प्रश्न है, क्योंकि एक ओर जहाँ बढ़ती हुई संपन्नता दिखायी पड़ती है, वहीं दूसरी ओर गरीबी भी बढ़ रही है, परन्तु धनवान अथवा निर्धन, नगर अथवा ग्राम, सभी जगह संपूर्ण समाज पर इसका कुप्रभाव भागदौड़ भरे तनाव ग्रस्त जीवन के रूप में स्पष्ट दिखायी पड़ रहा है। चिरकाल से चला आ रहा भारत का संतोषमय जीवन इतिहास के पन्नों में सिमट चुका है। सुख और संतोष कार्य-कारण के रूप में मानव जीवन के अभिन्न अंग हैं। जहाँ संतोष नहीं है, वहाँ सुख कहाँ से आएगा ?

सुख की खोज हर प्रकार के जीवधारी का धर्म है। निम्नस्तर के जीवधारियों में सुख की अनुभूति शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्तिमात्र से ही हो जाती है, परन्तु जीवधारियों की क्रमशः उच्च प्रजातियों में मन न्यूनाधिक रूप में विकसित हो जाता है। मानव में मन सबसे अधिक विकसित होता है। सुख-दुख की अनुभूति मन में ही होती है; इसके लिए बाहर की परिस्थितियाँ जिम्मेदार नहीं होती हैं। किसी एक ही परिस्थिति में किसी एक व्यक्ति को सुख की, परन्तु दूसरे व्यक्ति को दुख की अनुभूति हो सकती है।

प्रत्येक जीवधारी सुखमय अथवा दुखमय, किसी भी परिस्थिति में स्वयं को सदा जीवित बनाये रखने हेतु प्रयत्नशील रहता है। इस प्रकार, हम अपने-आप को सबसे अधिक चाहते हैं, और अपना जीवन सुखमय बनाने के बदले में मानसिक तनाव खरीद लेते हैं। हम यह भी नहीं सोचते हैं कि इस क्रय-विक्रय से हमें लाभ होता है या हानि।

सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी बिगड़ गयी हैं, और अधिक बिगड़ती जा रही हैं कि मानसिक तनाव हमारे दैनिक जीवन का अंग बन गया है तथा उच्च रक्त चाप, अम्लता, अपच, व्रण (अल्सर), हृदय रोग, मानसिक रोग आदि के रूप में इसके कुप्रभाव भी क्रमशः बढ़ रहे हैं। अपनी परिस्थितियों को तो हम बदल नहीं सकते हैं, स्वयं अपने मन को सँभाल कर तनाव से संपूर्ण मुक्ति न भी सही, इसे कम करके क्या हम स्वयं को कई प्रकार के रोगों से बचा सकते हैं ?

तनाव से बचने का एकमात्र उपाय यह है कि तनाव पैदा करने वाली परिस्थितियों से हम स्वयं को अलग कर लें। जितने अधिक समय के लिए हम अलग रहने में सफल हो सकेंगे, तनाव उतना ही कम कुप्रभाव हमारे शरीर पर डाल सकेगा। इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि आने वाले खतरे से, यदि उसकी कोई संभावना हो, तो भी हम स्वयं को अलग कर लें जिससे कि जब वह खतरा आ पड़े, तो हम उससे निपटने के लिए तैयार भी न रहें।

हमें संभावित खतरे से पैदा होनेवाले केवल मानसिक तनाव से बचना है ताकि हमारे शरीर की सारी शक्तियां उससे निपटने के लिए सदा सजग रहें। इसका मतलब यह भी नहीं है कि हम किसी नशीले पदार्थ का सेवन करने लगें ताकि जब तक नशे में डूबे रहें, हम तनाव से बचे रहेंगे। तनाव के बहाने नशा करना केवल स्वयं को ही धोखा देना है, क्योंकि इससे न तो तनाव कम होता है, न उसे पैदा करनेवाली परिस्थितियाँ बदलती हैं, और न उनसे निपटने के लिए हमारे शरीर और मन की शक्तियाँ ही सजग रह पाती हैं।

तनाव से बचने के दो साधन हैं, अस्थायी और स्थायी। अस्थायी साधन में हम मनोरंजन आदि के द्वारा अपने मन को तनावमय परिस्थितियों से कुछ समय के लिए दूर रख सकते हैं। जिस विषय में हमारा मन रम जाए, हम उसे मनोरंजन कहते हैं। मनोरंजन का विषय हमारे स्वयं से अलग होना चाहिए, क्योंकि स्वयं की थोड़ी देर की संगति भी हमारे मन को ऊब से भर देती है। मनोरंजन स्वस्थ और सामाजिक होना चाहिए। अस्वस्थ और असामाजिक मनोरंजन

मन पर अपना कुप्रभाव छोड़ जाता है ।

स्थायी साधन में हमें अपना ध्यान जबरदस्ती अपने मन पर ही केन्द्रित बनाये रखना पड़ता है । इसके लिए दिन या रात के किसी भी प्रहर के लिए कोई ऐसा एकान्त स्थान खोजा जाता है, जहाँ हमारा ध्यान बलात अपनी ओर खींच लेनेवाला कोई विघ्न न हो । खाना खाने के तीन घंटे या अधिक समय बाद मेरु दंड (रीढ़ की हड्डी) को सीधा रखकर पद्मासन या सुखासन में बैठकर वहाँ हम संसार से अलग केवल अपनी संगत करते हैं । आरंभ में अपनी संगत ऊब पैदा कर देती है, परन्तु अपने मन और शरीर को शिथिल करके बार-बार के अभ्यास से हमारा ध्यान संसार की हर वस्तु से, तनाव पैदा करनेवाली परिस्थितियों आदि से भी हटकर केवल स्वयं के ऊपर केन्द्रित होने लगता है । हम तब अपने मन में पैदा होते हुए विचारों की अनुभूति कर सकते हैं, और धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ा कर मन में पैदा होनेवाले हर विचार को दबाकर निर्विचार स्थिति पैदा कर सकते हैं । यह मन के पूर्णरूप से शान्त होने की स्थिति होती है जो हमारे स्वयं की संगति का अन्तिम लक्ष्य है । यह लक्ष्य तब जल्दी प्राप्त हो जाता है, जब अभ्यास आरम्भ करने के दिनों में कोई मानसिक तनाव न हो । लक्ष्य प्राप्ति के बाद विकट परिस्थितियों में भी मन विचलित नहीं होता है ।

स्वयं पर ध्यान केन्द्रित करने की विधि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं खोजनी पड़ती है । कुछ लोग जो इसे अनुभवातीत मनन (ट्रांसेंडेंटल मेडीटेशन) कहते हैं, ध्यान लगाने की विधि भी सिखाते हैं, जो उनके अनुसार सभी व्यक्तियों पर एक-सी लागू हो जाती है, यद्यपि हमारी समझ में प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने विचारों के अनुसार अलग होता है । हमारा व्यक्तित्व उस सब का समुच्चय होता है, जो कुछ भी हम जन्म से प्रारम्भ करके हो चुके होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति की जीवन घटनाएं और उनका उस पर प्रभाव अलग-अलग होता है, अतः विचारों में, व्यक्तित्व में प्रत्येक व्यक्ति अन्य किसी से भी अलग ही होता है ।

शास्त्रीय भाषा में यदि कहा जाए, तो दो-चार मिनट की निर्विचार स्थिति को 'धारणा', अधिक समय की स्थिति को 'ध्यान' और दो-चार घंटे या इससे अधिक की निर्विचार स्थिति को 'समाधि' कहते हैं । गृहस्थों को तनाव दूर करने के लिए समाधि की स्थिति प्राप्त करने तक की साधना आवश्यक नहीं है, परन्तु थोड़ी देर के लिए प्रतिदिन केवल स्वयं की संगति स्थायी रूप में लाभदायक अवश्य होती है ।

* * * * *

विभिन्न विषयों पर लेखों की माला प्रस्तुत है । आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा है ।

- जनार्दन स्वरूप

वेशरम (आईपोमिया कार्निया) द्वारा कागज निर्माण

रुद्र नारायण शुक्ल
विभागाध्यक्ष, रसायन शास्त्र
शासकीय कनिष्क महाविद्यालय, सारंगी (झाबुआ) - म.प्र.

कागज उद्योग के लिए कच्चेमाल की आपूर्त्ति जंगल कटते रहने के कारण दिनोदिन कठिन होती जा रही है । प्रस्तुत लेख में, परम्परागत कच्चे माल, बाँस, अशोक, नीलगिरि आदि के स्थान पर बेशरम के उपयोग का शोधपूर्ण प्रस्ताव किया गया है । ये झाड़ी कहीं भी उग सकती है, कदाचित इसीलिए इसका स्थानीय नाम बेशरम या वेशरम पड़ गया है ।

वर्तमान में कागज की आवश्यकता अत्यधिक होने के कारण कागज का निर्माण वन सम्पदा से प्राप्त लकड़ी, बाँस, घास जैसे तन्तुमय कच्चे माल से किया जा रहा है । इस के साथ ही, कृषि से निष्पन्न पदार्थ, जैसे भूसा, बैगास आदि के द्वारा भी कागज का निर्माण किया जाता है । पिछले कुछ वर्षो से बहुमूल्य वन सम्पदा की अवैध कटाई के कारण कच्चे माल की समुचित मात्रा में आपूर्ति न होने के कारण कागज उद्योग गहन संकट के दौर से गुजर रहा है । भूसा, तथा बैगास (गन्ने की छोई) का उपयोग पशुओं के आहार के लिए होने के कारण इसका भी उपयोग कागज निर्माण के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता है । फलस्वरूप, हमारे लिए यह नितांत आवश्यक है कि हम इसके स्थान पर किसी ऐसे नये तन्तुमय कच्चे माल की खोज करें जो कि सहज रूप में उपलब्ध भी हो जाये तथा उससे बनने वाले कागज की गुणवत्ता में कमी न आये । इस संदर्भ में वेशरम (आईपोमिया कार्निया जै.) से पहले लुगदी एवं फिर कागज बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की गयी है ।

वेशरम को वनस्पतिक विज्ञान में आईपोमिया कार्निया कहते हैं जो कि कनवेल्ब्यूलेसी कुल का सदस्य है एवं आम तौर पर ऊष्ण कटिबन्धी, कटिबन्धीय एवं ऊष्णीय, तीनों परिस्थिति में उगने के कारण भारत वर्ष के लगभग सभी हिस्सों में पायी जाने वाली झाड़ी है । इस झाड़ी की कार्निया जैकेरिया जाति कहीं भी किसी भी परिस्थिति में शीघ्रता से वृद्धि करने में सक्षम इसकी विशेषता है । इस के साथ ही, यह अनुपजाऊ तथा बंध्या भूमि पर भी आसानी से वृद्धि करती है । वेशरम झाड़ी की प्राप्ति साधारणतया एक हेक्टेयर भूमि में बिना किसी अधिक खर्च तथा बिना विशेष देखरेख के 20 से 25 टन तक की जा सकती है । इसके लिए 6 माह से एक वर्ष तक की समयावधि पर्याप्त है ।

अब तक वेशरम नितान्त अनुपयोगी ही रही है । इसकी शीघ्र वृद्धि के कारण ग्रामीण अंचलों में इसका उपयोग पिछले कुछ समय से खेत के चारों ओर बागड़ लगाने के रूप में एवं शहरी क्षेत्र में सुन्दरता के लिए किया जा रहा है, लेकिन वृद्धि एवं अत्यधिक भूमि घेरने की प्रवृत्ति के कारण बागड़ के रूप में यह लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकी । इसके साथ ही, इसकी लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में भी किया जाने लगा जोकि जन्तुओं तथा मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध हुआ तथा इससे निकलने वाले धुएं के कारण वायु प्रदूषण द्वारा पर्यावरण प्रदूषित होने की आशंका होने लगी । पर्यावरण संतुलन बनाये रखना सर्वधा जरुरी है, अत: इसका उपयोग ईंधन के रूप में न किया जाकर कोई सार्थक उपयोग किया जाना चाहिए । इस संदर्भ में इसका सफलतम प्रयोग लुगदी एवं कागज जैसी बहुमूल्य वस्तु बनाने में किया गया जिसका विवरण बिन्दुसार नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

प्रयोगात्मक विश्लेषण : वेशरम के द्वारा लुगदी एवं कागज निर्माण करने के लिए एवं उसकी

गुणवत्ता परखने के लिए इसकी लकड़ी का तथ्यात्मक अध्ययन करना अनिवार्य है । प्रयोगात्मक विश्लेषण में इन्ही विशेष तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है । उपर्युक्त विश्लेषण के अन्तर्गत शाखाओं का रसायनिक विश्लेषण, तन्तु की संरचना, लुगदी तथा कागज का निर्माण एवं इस प्रक्रिया द्वारा निर्मित कागज की गुणवत्ता का परीक्षण व अन्य प्रकार के तन्तुमय कच्चे माल से निर्मित कागज के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना अनिवार्य है, तभी वेशरम के द्वारा निर्मित कागज की उत्कृष्टता सिद्ध होगी ।

विश्लेषण के लिए देश के विभिन्न भागों से, जैसे उत्तर प्रदेश के नैनीताल, ललितपुर, बरेली, मध्य प्रदेश के विदिशा, ग्वालियर, रायपुर, पंजाब के रोपड़, होशियारपुर, उड़ीसा के कोरापुर, आन्ध्र प्रदेश के विजयनगरम् आदि जिलों से वेशरम की शाखाओं को एकत्र करके इनका अध्ययन किया गया । जिस प्रक्रिया द्वारा कागज निर्माण किया गया वह निम्न तीन बिन्दुओं के द्वारा प्रस्तुत है; 1. रासायनिक विश्लेषण 2. लुगदी निर्माण एवं परीक्षण, तथा 3. कागज निर्माण एवं परीक्षण ।

1. रासायनिक विश्लेषण : रासायनिक विश्लेषण हेतु शाखाओं को आई.एस.आई. परीक्षण विधि से बुरादा (डस्ट) बना कर प्रादर्श तैयार करते हैं । इस प्रादर्श से पूर्ण रासायनिक विश्लेषण अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त टी.ए.पी.पी.आई. विधि से क्रमानुसार परीक्षण करने पर परिणाम सारणी - 1 में दिखाये गये हैं ।

सारणी - 1

विशेष तत्व (पारटीक्यूलर्स)	वेशरम (आइपोमिया कार्निया)	अन्य तन्तुमय कच्चा माल	
		(डेन्डक्लेमस स्ट्रिक्टस) बांस	बैगास
	%	%	%
1. अकार्बनिक पदार्थ	5.90	1.90	4.10
2. कार्बनिक पदार्थ	94.10	1.90	5.90
3. ठंडे पानी में विलेयता	6.96	4.60	5.80
4. गर्म पानी में विलेयता	12.01	6.30	10.10
5. ईथर में विलेयता	2.01	1.40	0.31
6. एल्कोहल एवं वेंन्जीन में विलेयता	7.90	2.70	4.30
7. 1 % कास्टिक में विलेयता	32.40	18.70	24.00
8. होलो सेलूलोज	65.14	67.90	66.10
9. लिग्निन पदार्थ	17.80	19.20	26.60
10. पैन्टोजन पदार्थ	15.01	15.80	17.70
11. हेमी सेलूलोज	29.52	-	-

इन परिणामों के आधार पर हमने पाया कि वेशरम में लिग्निन पदार्थ अन्य की अपेक्षा कम है, जो तन्तुओं को आपस में बांधे रखता है । लिग्निन की कमी लुगदी निर्माण में सहायक है क्योंकि लुगदी बनाने में लिग्निन को तन्तुओं से अलग करके बाहर निकाल दिया जाता है । इसके साथ ही, इसमें सैलूलोज जो कि लुगदी कहलाती है, अन्य कच्चे

न की तुलना में लगभग बराबर है। अन्य विशेषता रूप में यह देखने में आया कि सैलूलोज में उपस्थित ोसैलूलोज अन्य कच्चे माल की तुलना में कम होने इसकी लुगदी धागे (रेयोन) बनाने में अच्छी सिद्ध

का कागज निर्माण करने में सहायक होते हैं। वेशरम के तन्तु में पतली भित्ती के अन्दर चौड़ा खोखला भाग (ल्युमिन) होने के कारण वह दोहरी दीवार वाले फीते का आकार ग्रहण कर लेता है, फलस्वरूप लुगदी

सारणी - 2

तन्तुमय कच्चा माल	तन्तु की लम्बाई (मि. मी.)	तन्तु की चौड़ाई (माइक्रोन)	तन्तु की कोशा भित्ती की मोटाई (माइक्रोन)	दीवार के भाग
. वेशरम (आइपोमिया कार्निया)	0.61	33.24	1.45	9
. बाँस (डेन्डक्लेमस स्ट्रिक्टस)	1.75	15.50	5.00	65
. कैनाफ (हिविस्कल केनविनस)	1.53	28.00	5.00	36
. नीलगिरि (यूकोलिप्टिस सि.)	0.97	12.88	4.18	66

सकती है।

लुगदी निर्माण : सूखी शाखाओं के टुकड़े के उचित आकार के अनुसार वर्गीकरण करने के द उनको लुगदी बनाने वाले पाचनित्र (डाइजैस्टर) डालकर 17% रासायनिक द्रव (कास्टिक सोडा एवं डियम सल्फाइट का मिश्रण) मिलाया एवं 165° से. ामान एवं 2.2 कि.ग्राम/घण्टा दाव पर 90 मिनिट क पकाया गया। पकने के बाद लुगदी र्मित हुई।

उपर्युक्त क्रिया से प्राप्त लुगदी को पानी से फ करने के बाद उसमें से बिना पके टुकड़ों का क कर देने के बाद साफ अविरंजक लुगदी 45-48% क प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त लुगदी का श्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि अन्य कच्चे माल ा प्राप्त लुगदी तथा वेशरम की लुगदी के गुण-धर्म भग समान हैं, विशेष रुप से इसके तन्तुओं की ना की तुलना अन्य तन्तुओं से की गयी जिसके ाणाम सारणी-2 में प्रस्तुत हैं।

इन तथ्यों के अध्ययन के आधार पर वेशरम तन्तु की दीवाल की मोटाई कम होने के कारण ार के खंड (फ्रेक्शन) भी कम होते हैं। सामान्यत:, तन्तु जो पतली भित्ती वाले होते हैं, उत्कृष्ट कोटि

बनाते समय लिग्निन का पृथक्करण शीघ्रता पूर्वक हो जाता है। चूँकि सतह चौड़ी होती है, अत: आन्तरिक तन्तु बन्ध सुगमता पूर्वक हो जाता है, जो कि कागज निर्माण के समय कागज को यान्त्रिक मजबूती तो प्रदान करता ही है, साथ ही उच्च गुणवत्ता भी बनाये रखता है। इस प्रकार प्राप्त अविरंजक लुगदी से अविरंजक (रंगहीन) कागज का निर्माण किया जा सकता है। अविरंजक लुगदी का विरंजन, विरंजक पदार्थ द्वारा निम्न चरणों में किया जाता है।

(1) क्लोरीनीकरण (2) क्षारीकरण (3) विरंजीकरण

1. क्लोरीनीकरण : इस प्रक्रिया में अविरंजक लुगदी की 6.2% क्लोरीन जल के साथ 30 मिनिट तक साधारण तापमान पर क्रिया की जाती है। क्रिया के फलस्वरूप लुगदी में उपस्थित लिग्निन क्लोरो लिग्निन बनाता है। यह क्लोरो लिग्निन अगले पद में क्षार के साथ विलयन शील हो जाता है।

2. क्षारी करण : उपरोक्त क्रिया से प्राप्त लुगदी को 1.1% कास्टिक सोडा के साथ 40-45° से. पर एक घन्टे तक क्रिया करने से क्लोरो लिग्निन सोडियो लिग्नेट में परिवर्तित होकर जल में विलेय हो जाता है, एवं बाहर निकल जाता है। अब केवल लुगदी एवं कुछ रंगीन अवक्षेप शेष रह जाते हैं। इसका

विरंजन अगले पद में कर लेते हैं ।

3. विरंजनीकरण : ऊपर लिखित प्रक्रिया से प्राप्त रंगीन लुगदी में 0.4 से 0.8% तक कैलशियम हाइपोक्लोराइड प्रवाहित करके 40° से. पर 2 से 3 घंटे तक क्रिया कराई जाती है । क्रिया में सभी बचे हुए रंगीन पदार्थ पूर्ण रूप से विरंजक होकर 80-84% तक चमक वाली लुगदी प्रदान करते हैं ।

उपरोक्त तीनों पदों के बाद प्राप्त लुगदी की मात्रा 35-38% तक होती है । इसकी परीक्षा यह सिद्ध करती है कि विरंजक लुगदी सफेद उच्च कोटि के कागज को बनाने में आर्थिक दृष्टि से भी सफल सिद्ध होगी ।

कागज निर्माण एवं परीक्षण : अविरंजक एवं विरंजक लुगदी के द्वारा पृथक-पृथक प्रकार के कागज का निर्माण किया जाता है । इनके निर्माण की प्रयोगवाली विधि में उपर्युक्त दोनों प्रकार की लुगदी को वीटर यन्त्र द्वारा 40 एस.आर. तक तन्तु को पृथक करने के बाद हाथ-मशीन (ब्रिटिश हेंडशीट मेकर) के द्वारा 60 ग्राम/वर्ग सें.मी. की शीट बनायी गयी । इस शीट को वायुदाब से यन्त्र द्वारा दबाया तथा कमरे के तापमान में सुखाकर सूखी शीट का परीक्षण आई.एस.आई. विधि के अनुसार किया गया ।

दोनों प्रकारके कागजों की गुणवत्ता की तुलना बाँस द्वारा बनाये गये समान प्रकार के कागज से की ग जिसके परिणाम सारणी-3 में प्रदर्शित किये गये हैं

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवरण एवं विधि आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वेशरम व उपयोग करते हुए औद्योगिक स्तर पर कागज का निर्मा किया जाना संभव है । वेशरम से बनाया गया कागज अन्य कच्चे माल द्वारा बनाये गये कागज के समकक्ष ही होता है, किन्तु दोनों की लागत में पर्याप्त अन्त दृष्टिगोचर होता है । इस प्रकार, वेशरम का उपयोग रचनात्मक कार्य में होने लगेगा तथा प्राय: अनुपयुक्त समझी जाने वाली इस झाड़ी से एक महत्वपूर्ण उत्पाद बनाया जा सकेगा । जैसा कि पूर्व में भी कहा गया कि इसको बंजर भूमि पर भी उपजाया जा सकता है तथा इसकी वृद्धि क्षमता भी अधिक है, अत: यह काफी हद तक कागज उद्योग पर होने वाले व्यय को नियंत्रण करने में सहायक होगा । वेशरम से कागज निर्माण करके कागज उद्योग में गहराते हुए संकट को दूर किया जा सकेगा तथा विदेशी मुद्रा की बचत हो सकेगी । चूँकि वेशरम का उत्पादन बिना किसी विशेष प्रयास व खर्च के बहुतायत में किया जा सकता है, अत: कागज की माँग एवं पूर्ति में सामंजस्य स्थापित किया जा सकेगा ।

* * *

सारणी - 3

विषयक गुण	इकाई	वेशरम	बाँस
चमक (ब्राइटनैस)	I.S.O	84	84
पोस्ट. कलर नम्बर	नम्बर	7.23	8.13
वस्ट इंडेक्स	$KPaM^2/g$	3.33	3.53
ब्रेकिंग लेन्थ	कि.मी.	7.64	6.06
टियर इन्डेक्स	m Nm^2/g	3.92	5.78
पोरोसिटी	-	0	72
विस्कोसिटी	cps	6.3	6.9

ज्यामितीय संस्कार

गोविन्द प्रसाद शर्मा
13/1, श्रेणी चार, सा.नि.वि. कालोनी
जेल मार्ग, लखनऊ - 226002

गणित के विभिन्न आधारों में से ज्यामिति या रेखा गणित एक है। किसी वृत्त की परिधि और उसके व्यास का अनुपात (3.1417) एक स्थिरांक होता है, जिसे यूनानी अक्षर, पाइ, से सम्बोधित करते हैं। आधुनिक गणित के इस महत्त्वपूर्ण स्थिरांक को रेखागणित द्वारा ही खोजा गया था। ज्यामिति के इतिहास सहित, इसके कुछ आधारभूत तथ्य प्रस्तुत हैं।

किसी भी शिक्षार्थी की शिक्षा तब तक पूरी नहीं कही जानी चाहिए, जब तक वह ज्यामिति का अ-ब-स न जान ले। शाब्दिक अर्थ के रूप में ज्यामिति अर्थात "भूमि-मापन" का द्योतक है। लेकिन ज्यामिति का व्यापक अर्थ बिन्दु, रेखा, विभिन्न सतही व ठोसीय आकार तथा नियामकांक्ष्म से सम्बन्धित गणितीय संस्कृति का परिचायक है। प्राचीन भारत में इस विषय को रेखागणित के रूप में जाना जाता था। प्राचीन जैन ग्रन्थ में इस विषय की उपयुक्तता को स्वीकारते हुए यह अभिव्यक्त किया गया है कि "ज्यामिति गणित का कमल है और शेष सब तुच्छ हैं।" ज्यामितीय संस्कृति उतनी ही पुरानी है, जितनी कि सनातन वैदिक संस्कृति। वेदियों के निर्माण में ज्यामितीय तरीकों को ही अपनाया जाता था। ज्यामितीय शिक्षा की महत्ता को स्वीकारते हुए भारतीय गणितज्ञों में, मुख्य रूप में आर्यभट्ट, भास्कराचार्य तथा महावीराचार्य तथा विदेशी गणितज्ञों में मुख्य रूप से यूक्लिड, अपोलोनियस, थेल्स, पाइथागोरस तथा आर्कमडीज ने ज्यामिति शास्त्र के क्षेत्र में बहुत सारे मापदण्ड स्थापित किये हैं।

ज्यामिति शास्त्र की उपयोगिता व उसके तत्व से परिचित होने से पूर्व उसके ऐतिहासिक तथ्यों से अवगत हो लेना चाहिए। पुराने जमाने में ज्यामितीय सूत्रों की जांच करने तथा तर्क की कसौटी पर परखने का चलन नहीं था। सूत्रों का उपयोग ब्रम्ह वाक्य यानि स्वयं सिद्धियों के रूप में किया जाता था। वैदिक काल में कुछ विशिष्ट ज्यामितीय सम्प्रदाय थे। ये सम्प्रदाय मुख्य रूप से बौधायन, आपस्तम्ब तथा कात्यायन थे। ये मुख्यतः ज्यामितीय संस्कृति का विकास तथा ज्यामितीय शिक्षा का प्रसार करते थे। संस्कृत-साहित्य में जीवा, ज्या व अर्द्धज्या आदि शब्दों का प्रयोग इस बात की ओर इंगित करता है कि ज्यामितीय संस्कृति एक सनातन संस्कृति है। भास्कर रचित श्लोक पर ध्यानावलोकन किया जाये -

व्यासे भनन्दाग्नि हते विभक्ते ख बाण सूर्यैः परिधिस्तुसूक्ष्मः।
द्वाविंशति जे विहृते य शैलैः स्थलोउथवा स्याद्व्यवहार योग्यः॥

इस सूत्र में परिधि व व्यास के अनुपात को निश्चित किया गया है। महावीराचार्य की कृतियों से ऐसा आभास मिलता है कि कुछ विशेष सतही आकृतियों के लिए संकेत स्थापित हो चुके थे, जैसे निम्न वृत्त, उन्नत वृत्त, कंबुक वृत्त, अंतश्चक्रवाल वृत्त, बहिश्चक्रवाल वृत्त, यवाकार क्षेत्र, मुरजाकार क्षेत्र, पण्वाकार क्षेत्र इत्यादि। यह प्रसन्नता की बात है कि जिन नवीन अभिव्यक्तियों का प्रचलन आधुनिक ज्यामिति शास्त्र में है, उनकी जानकारी हमारे पूर्वजों को विधिवत रूप से थी। एक अच्छे ज्यामितिज्ञ के लिए ज्यामिति के पुराने शास्त्रों से परिचित होना चाहिए। पुरानी किताबों में मुख्य आर्यभट्ट विरचित "आर्यभट्टीय", "वेदांग-ज्योतिष", "शुल्व सूत्र", भास्कराचार्य विरचित "सिद्धान्त शिरोमणि", "महाभाष्करीय", "लघुभाष्करीय", "लीलावती" तथा महावीराचार्य विरचित "वैदांग-ज्योतिर्ष", "गणित-तार" में ज्यामितीय प्रकरण पर समुचित रूप से प्रकाश डाला गया है। पौराणिक तथ्यों से परिचित

होने के लिए ऊपर वर्णित ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है ।

जहां हमें यह पता चलता है कि भारतीय ऋषियों ने ज्यामितीय संस्कृति को स्थापित करने में योगदान दिया है, वहाँ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि विदेशी मनीषियों ने भी ज्यामितीय संस्कृति को विकसित किया है । यूकिल्ड रचित ''मूल तत्व'' ज्यामिति का प्रमाणित ग्रन्थ माना जाता है । ज्यामितीय शिक्षा का विकास विश्व के हर कोने में सभ्यता के विकास के साथ ही होता रहा है । अरब के बादशाह फिरोजशाह बहमनो, अपोलोनियस, टालमी इत्यादि लोगों ने ज्यामितीय शिक्षा को लोकप्रिय बनाने में बहुत योगदान दिया है । यूरोपवासियों ने इस विषय को क्रमबद्धता प्रदान की । आज ज्यामिति की शिक्षा क्रमबद्ध रूप से प्रदान की जा रही है । ज्यामितीय शिक्षा कई शाखाओं में प्रचलित है, यथा त्रिकोणमिति, क्षेत्रमिति, रेखागणित, नियामक ज्यामिति, गोलक ज्यामिति, नियामकांकन, चित्रीकरण इत्यादि ।

ज्यामितीय शिक्षा का प्रकरण बिन्दु से प्रारम्भ होता है । ''बिन्दु'' एक ऐसा स्थानबोधक शब्द है जिसे सैद्धान्तिक रूप से परिभाषित करना आसान है, लेकिन व्यवहारिक रूप में दर्शाना कठिन है । बिन्दु उस स्थान का द्योतक है, जिसकी कोई लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई नहीं होती है । त्रिविमीय व्यवस्था में बिन्दु की कल्पना यह है कि किसी विमीय दिशा में बिन्दु का मापन सम्भव नहीं है । लेकिन इस कल्पित स्थान की उपयोगिता अनन्त है । बिना बिन्दु की कल्पना किये रेखा, क्षेत्र व ठोस की व्याख्या सम्भव नहीं है । ज्यामितीय संस्कृति का मूलाधार बिन्दु की ही कल्पना है, लेकिन यह एक विडम्बना है कि बिन्दु की इस कल्पना को कागज पर अक्षरश: साकार नहीं किया जा सकता है । जो भी साधन उपलब्ध हैं, वे बिन्दु को प्रकट करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं । बिन्दु में कुछ न कुछ मोटाई अवश्य होती है । इसके बाबजूद, नोकीली पेन्सिल से बिन्दु को दर्शाने की परम्परा है । बिन्दुओं को एक क्रम में रखने की व्यवस्था को रेखा की संज्ञा दी गयी है । यदि बिन्दुओं की क्रमबद्धता एक निश्चित दिशा में है, तो उस रेखा को सरल रेखा कहते हैं । यदि क्रमबद्धता में दिशा निश्चित न हो, तो उस रेखा को वक्र रेखा कहते हैं । इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि वह वक्र रेखा जिसकी वक्रता नगण्य है, सरल रेखा कही जा सकती है । रेखा के लिए यह परिभाषा स्थापित की गयी है कि जिसमें लम्बाई तो हो, लेकिन चौड़ाई व मोटाई न हो, वह रेखा है । रेखा की जिस परिभाषा की कल्पना की गयी है, वह व्यवहारिक नहीं है । ''बिन्दु'' अविमीय व परिमाण रहित राशि है जबकि ''रेखा'' एक विमीय तथा परिमाण युक्त मौलिक राशि है । इसी पर आधारित पृष्ठ व ठोस द्विविमीय व त्रिविमीय हैं तथा इनके परिमाण व्युत्पन्नराशीय हैं । तात्पर्य यह है कि बिन्दु मात्रक विहीन है । रेखा का मात्रक मीटर है । पृष्ठ व ठोस के लिए व्युत्पन्न मात्रक वर्गमीटर व घनमीटर हैं ।

ज्यामिति शास्त्र की मौलिकता रेखागणित में अन्तर्निहित है । रेखा गणित को दो भागों में व्यवस्थित किया गया है, प्रमेय व निर्मेय । प्रमेय ज्यामितीय शिक्षा का तार्किक पक्ष है । इस पक्ष को चिन्तन व तर्क के आधार पर सुव्यवस्थित कर सूत्रबद्ध किया जाता है । निर्मेय व्यवहारिक व रचनात्मक पहलू है । प्रमेय से सूत्र का प्रतिपादन किया जाता है । निर्मेय से ज्यामितीय आकार की रचना में सुलभता मिलती है । प्रमेय ज्यामितीय संस्कृति का सैद्धान्तिक पहलू है जिसे तार्किक योग्यता पर आत्मसात किया जाता है । निर्मेय अभियान्त्रिक व प्रौद्योगिक पहलू है ।

प्रमेय के सूत्रों की सत्यता की जांच तार्किक आधार पर की जाती है । तर्क को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए प्रारम्भ में कुछ स्वयंतथ्यों को अपनाया जाता है । समकोण किसी भी स्थान का हो, सभी बराबर होते हैं । स्वयंतथ्य उस तथ्य को कहते हैं जिसकी जांच करने के लिए न किसी तर्क और न किसी पूर्वतथ्य की प्रामाणिकता का सहारा लेना पड़ता है । चूँकि समकोण का अभिप्राय उस कोण से है जिसका

परिमाण 90° है, इसलिए प्रत्येक समकोण का बराबर होना निश्चित है। इसकी सत्यता में किसी भी प्रकार का लेशमात्र भी सन्देह नहीं होता है। इसी प्रकार, एक स्वयंतथ्य यह भी है कि किसी बाहरी बिन्दु से किसी रेखा को सबसे छोटी रेखा से मिलाने पर, यह मिलने वाली छोटी रेखा उस रेखा पर लम्ब कहलाती है, और इस प्रकार की रेखा केवल एक ही होती है। कुछ परिभाषाएँ भी प्रमेय की शिक्षा ग्रहण करने के लिए उपयोगी हैं, । 90° का कोण समकोण है, इससे छोटा न्यूनकोण, समकोण का दुगना ऋजु कोण, समकोण व ऋजु कोण के मध्य का कोण अधिक कोण तथा ऋजु कोण से बड़ा बृहत्कोण कहलाता है। तीन रेखाओं से घिरा हुआ पृष्ठीय क्षेत्र त्रिभुज कहलाता है। उसी प्रकार चतुर्भुज, पंजभुज षडभुज आदि का नामकरण किया गया है। नियमित व अनियमित, दोनों प्रकार की पृष्ठीय आकृतियों के गुणों का अध्ययन करने की परम्परा है। नियमित आकार के अन्तर्गत एक वृत्तीय आकार को भी अपनाया गया है। एक केन्द्रीय बिन्दु से एक निश्चित रैखिक दूरी से सीमांकन कर जिस आकार का चित्र बनता है, उसे वृत्त की संज्ञा दी गयी है। इस आकृति का एक नियत गुण है कि परिधीय लम्बाई व व्यासीय लम्बाई का अनुपात एक नियतांक होता है। कुछ और भी पृष्ठीय आकृतियों का अध्ययन किया जाता है - यथा दीर्घवलय या दीर्घ वृत्त (Ellipse) परावलय (Parabola), अपरूप वलय या अतिपरावलय (Hyperbola) इत्यादि।

प्रमेयों तथा उपप्रमेयों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए तर्क का सहारा लेना पड़ता है। सिद्धीकरण के इस अभ्यास से मानव में प्रत्युत्पन्नमतित्व के गुणों का विकास होता है। इस प्रक्रिया से मानव को अपने जीवन काल में तथ्य-विश्लेषण करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। ज्यामिति के इसी दृष्टिकोण के बिना जीवन को सार्थक नहीं बनाया जा सकता है, अतः ज्यामितीय संस्कार को स्थापित करना समाज व देश के हित के लिए उपयोगी है।

ज्यामिति के दूसरे व व्यवहारिक पहलू का दैनिक जीवन में उतना ही महत्व है जितना कि वैश्लेषिक पक्ष का। प्रमेय ज्यामिति का वैश्लेषिक पक्ष है, तो निर्मेय रचनात्मक पक्ष। निर्मेय की शिक्षा के सहारे हम बहुत सारी गणितीय समस्याओं को सुलझाते रहते हैं। खेत का बटवारा हो या अभियान्त्रिक सर्वेक्षण, ज्यामितीय आकार का निर्माण करना हो या ज्यामितीय कला का प्रस्तुतीकरण, ज्यामितीय निर्मेय ही सहायक होता है। इसकी शिक्षा से त्रिभुज, चतुर्भुज व अन्य बहुभुज का आकार बनाना, समान्तर रेखाओं को प्रस्तुत करना, वृत्तीय व अन्य वक्रीय आकृति को बनाना आदि सुलभ हैं। इसकी बदौलत हम यह सीख लेते हैं कि वर्ग के बराबर आयत, वर्ग व आयत के बराबर वृत्त या प्रतिलोम, या किसी एक आकृति के पृष्ठफल के बराबर कोई दूसरी आकृति की रचना कैसे की जाती है।

ज्यामितीय संस्कृति का पहला चरण रेखागणित के रूप में जाना जाता है। इसका दूसरा चरण त्रिकोणमितीय पाठ है। त्रिकोणमितीय पाठ का भी जीवन में उतना ही महत्व है, जितना कि रेखागणितीय शिक्षा का। त्रिकोणमितीय शिक्षा का भी प्रचार पुराने जमाने से हो रहा है। मिश्र सभ्यता का मुख्य आकर्षण पिरामिड है और पिरामिडों की समरूपता को निरूपित करने में त्रिकोणमितीय विचारों का सहारा लिया गया है। इस प्रकार, त्रिकोणमितीय क्रांति आयी। धूपघड़ी की कल्पना को इसी के सहारे साकार किया गया। न्यूटन ने त्रिकोणमितीय संस्कृति को सुदृढ़ किया तथा उसे क्रमबद्धता प्रदान की। इसको आधुनिक बनाने में डिमायवर का सहयोग रहा है।

त्रिकोणमितीय पाठ का मूलाधार है समकोण, त्रिभुज की तीनों भुजाओं का आपसी अनुपातिक सम्बन्ध। प्रत्येक दो भुजाओं के अनुपात के लिए एक संकेत शब्द की व्यवस्था है, लेकिन ये संकेत शब्द उस कोण का गुणबोधक है। उस विशेष कोण के सापेक्ष सामने वाली भुजा लम्ब कहलाती है। समकोण के सामने वाली भुजा कर्ण

कहलाती है तथा कोण की संगत भुजा आधार। लम्ब व कर्ण का अनुपात उस कोण की ''ज्या'', आधार व कर्ण का अनुपात ''कोटिज्या'' तथा लम्ब तथा आधार का अनुपात ''स्पर्शज्या''। इसी प्रकार इनके व्युत्क्रमानुपात क्रमशः ''कोटिछेज्या, छेज्या व कोटिस्पर्शज्या'' कहलाते हैं। चूँकि लम्ब व आधार के वर्गो का योग कर्ण के वर्ग के बराबर होता है, इसलिए ''ज्या'' व ''कोटिज्या'' के वर्गो का योगांक इकाई होता है। यह त्रिकोणमिति का एक प्रमुख सूत्र है।

ज्या व कोटिज्या के वर्गो का योगांक इकाई होने के आधार पर विश्लेषण कर बहुत सारे सूत्रों को व्युत्पन्न किया जा सकता है। दो या दो से अधिक कोणों के योग के त्रिकोणमितीय अनुपातों के भी सूत्र स्थापित किये जा सकते हैं। दो कोणों के योग की ''ज्या'' एक कोण की ज्या व दूसरे की कोटिज्या के गुणनफल तथा इनके प्रतिलोमों के गुणनफल के योग के बराबर होती है। लेकिन दो कोणों के योग की कोटिज्या, दोनों कोणों की ज्याओं के तथा इनकी कोटिज्याओं के गुणनफलों के अन्तर के बराबर होती है। इसी प्रकार, कोणान्तर की ज्या, एक कोण की ज्या व दूसरे की कोटिज्या के तथा विपरीत कोणों की ज्या व कोटिज्या के गुणनफलों के अन्तर के बराबर होती है। कोणान्तर की कोटिज्या, दोनों कोणों की ज्याओं व कोटिज्याओं के गुणनफल के योग के बराबर होती है। इसी प्रकार, किसी कोण के त्रिकोणमितीय अनुपातों से उस कोण के अर्द्धक दुगुना व तिगुना के त्रिकोणमितीय अनुपातों के लिए सूत्रों का विन्यास किया जा सकता है।

त्रिकोणमितीय पाठ का अगला क्रम है त्रिकोणमितीय समीकरणों का अध्ययन। समीकरणों का सरलीकरण ही इस पाठ का उद्देश्य होता है। समीकरण का हल ढूँढ कर कोण का व्यापक मान ज्ञात किया जाता है। त्रिभुज के विभिन्न गुणों का अध्ययन किया जाता है। त्रिभुजीय गुणों के विश्लेषण व व्याख्या भी व्यवहारिक पहलू को समझने में सहायक होते हैं। इन्हीं त्रिभुजीय गुणों से परिचित होने के पश्चात सेतु, भवन व अनेकानेक आधुनिक संरचनाओ की परिकल्पना करने में सुविधा मिलती है। त्रिभुजीय आकृति का पृष्ठीय क्षेत्रफल अर्द्धपरिमाप तथा अर्द्धपरिमाप व भुजाओं के तीनों अन्तरों के गुणनफल का वर्गमूलांक होता है। समरूपता का भी बहुत महत्व है, इस धारणा के फलस्वरूप उँचाई व दूरी से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान सुलभ हो जाते हैं। समरूपता का सिद्धान्त व्यवहारिक समाधान के लिए सब से ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुआ है।

ज्यामितीय संस्कृति का अगला चरण है निर्देशांकन या नियामकांकन। इसी आधार पर निर्देशांक ज्यामिती का विकास हुआ। निर्देशांक ज्यामिति का दो रूपों में अध्ययन किया जाता है। पृष्ठीय समस्याओं से जूझने के लिए द्विविमीय निर्देशांक ज्यामिति तथा ठोसीय समस्याओं के लिए त्रिविमीय निर्देशांक ज्यामिति। द्विविमीय निर्देशांक ज्यामिति में बिन्दु को दो अंकों से दर्शाया जाता है, जबकि त्रिविमीय निर्देशांक ज्यामिति में तीन अंकों से। दोनों ज्यामितियों में एक ही विशेषता है कि बीजीय कथनों की सहायता से ज्यामितीय संस्कार को आत्मसात करना। इसी प्रकार, बीजीय नियमों व विधियों का प्रयोग कर ज्यामितीय वक्रों का विश्लेषण तथा उनके गुणधर्मों के अध्ययन किये जाते हैं। इस साधन से ज्यामिति की कठिनतम समस्याओं का समाधान ढूंढने में सहायता मिलती है।

निर्देशांक का सिद्धान्त मानव को प्रकृति-रहस्य समझने में प्रज्ञान प्रदान करता है। इसके फलस्वरूप कई नयी ज्यामितीय सभ्यताओं का उद्भव व विकास सम्भव हो रहा है। इसकी सहायता से प्रकृति की जटिल समस्याओं के सरलीकरण के लिए उचित आयाम मिला है। इससे मानव को बेहतर समझ की समर्थता प्रदत्त हुई है।

दोनों निर्देशांक ज्यामितियों में बिन्दु पथ को दर्शाने के लिए एक समीकरण की मान्यता बरकरार रहती है। एक घातीय समीकरण बिन्दु पथ की सरलता

का द्योतक है । एक घातीय समीकरण सदैव सरल रेखा को दर्शाता है । चूँकि बिन्दु पथ बिन्दुओं का समुच्चय है जिसमें प्रत्येक बिन्दु एक निश्चित प्रतिबन्ध का पालन करता है, इसलिए इस प्रतिबन्ध सूत्र को समीकरण कहते हैं । प्रतिबन्ध बदलने पर बिन्दु पथ भी बदल जाता है । बिन्दु पथ के किसी बिन्दु के निर्देशांकों में ऐसा सम्बन्ध जो उस विन्दु पथ पर पड़ने वाले प्रत्येक बिन्दु के लिए सत्य हो, उस पथ का समीकरण कहलाता है । समीकरण में निर्देशांकों के घातों की दशा गुणित होने पर बिन्दु पथ की वक्रता बढ़ जाती है । निर्देशांकों का रूपांतरण दो बातों पर निर्भर करता है; अक्षों के स्थानान्तरण व परिक्रमण पर । द्विघातीय समीकरण दो रेखाओं को निरूपित करता है या वक्रता प्रदान करता है । इसी प्रकार बहुघातीय समीकरण की स्थिति होती है । द्विविमीय ज्यामिति में दोनों निर्देशांकों के वर्गो के योग का वर्गमूलांक ही अभीष्ट वृत्त की त्रिज्या होती है, जहां वृत्त के केन्द्र का निर्देशांक शून्य-शून्य होता है । इसी प्रकार, त्रिविमीय ज्यामिति में तीनों निर्देशांकों के वर्गो के योग का वर्गमूलांक ही अभीष्ट ठोसीय गोलाकृति की त्रिज्या होती है, जहां ठोसीय गोलाकृति के केन्द्र का निर्देशांक शून्य-शून्य-शून्य होता है । इस ज्यामिति से पूर्ण परिचित होने के लिए परावलय, इलावलय या दीर्घ वृत्त, अतिपरावलय या डमरूवलय तथा अन्य वक्रीय पृष्ठों के लिए समीकरण सूत्र का विन्यास किया जाता है । इसी प्रकार, परावलयड (Paraboloid) इलावलयड (Ellipsoid) अतिपराबलयड या डमरू वलयड (Hyperboloid) तथा अन्य बक्रीय ठोसाकृतियों के लिए समीकरण सूत्र स्थापित किये जाते हैं । इस ज्यामिति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, इसलिए मानव को इस क्षेत्र में बुद्धि लगाकर अनेकानेक गणितीय समस्याओं का हल निकालने का प्रयास करना चाहिए । इस ज्यामिति के माध्यम से परम्परागत तरीकों से हल न होने वाली गणितीय समस्याओं को बड़े रोचक ढंग से तथा शीघ्रता से हल किया जा सकता है । एक बार की बात है, दो समीकरण के माध्यम से उभयनिष्ठ विन्दु के दोनों निर्देशांकों को ज्ञात करना था । पहला समीकरण, प्रथम अज्ञातांक व द्वितीय अज्ञातांक के वर्गमूलांक का योग ग्यारह के बराबर तथा दूसरा समीकरण, प्रथम अज्ञातांक के वर्गमूलांक व द्वितीय अज्ञातांक का योग सात के बराबर है । दोनों अज्ञातांकों का पता लगाना है । इस प्रश्न का सरलीकरण पारस्परिक ढंग से सुलभ नहीं है, लेकिन निर्देशांकों के सहारे दोनों समीकरणों के अनुसार वर्गावली (ग्राफ) पर बिन्दुपथ चित्रित कर के उभयनिष्ठ बिन्दु के निर्देशांकों को ज्ञात किया जा सकता है । ये ही निर्देशांक अज्ञातांक हैं । इस दृष्टान्त से ज्यामिति की उपयोगिता को दर्शाया गया है ।

ज्यामिति संस्कृति का एक और अंग है और वह है गोलीय त्रिकोणमिति । चूँकि गोलीय त्रिभुज व पृष्ठीय त्रिभुज के गुणों में मौलिक अन्तर होता है, इसलिए पृष्ठीय त्रिभुजों के गुणों के आधार पर स्थापित त्रिकोणमितीय पाठ के माध्यम से गोलीय त्रिभुजाकारों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है । इसी क्रम में गोलीय त्रिकोणमिति की संस्कृति का विकास हुआ है । पृथ्वी के अक्षांशों व देशान्तरों का निश्चयन भी इसी गोलीय त्रिकोणमिति के गुण-धर्मो के आधार पर करने का प्रचलन है । तीन बृहत् वृत्तीय चापों के कटान के फलस्वरूप गोलीय त्रिभुजाकार का निर्माण होता है । वृहत् वृत्तीय चाप ही गोलीय त्रिकोणमिति का मूलाधार है । गोलीय त्रिभुज में भी किन्हीं दो भुजाओं का योग तीसरी भुजा से बड़ा होता है । भुजाओं की लम्बाई पर ही उसके सम्मुख कोण का परिमाण निर्भर करता है । बड़ी भुजा का सम्मुख कोण बड़ा और छोटी भुजा का सम्मुख कोण छोटा होता है । गोलीय त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होने का कोई प्रमाण नहीं होता है । इस ज्यामिति का एक प्रमुख सूत्र है "ज्या सूत्र" । किसी भी गोलीय त्रिभुज के किसी एक कोण की ज्या, तथा उस कोण की सामने वाली भुजा या वृहत वृत्तीय चाप द्वारा गोलक के केन्द्र पर अवतरित कोण की ज्या की समानुपाती होती है । कहने का

तात्पर्य यह है कि तीनों गोलीय कोणों की ज्याओं का उनके सामने के वृहत चापों द्वारा गोलक के केन्द्र पर अवतरित कोणों की ज्याओं के अनुपात सदैव बराबर होते हैं । इस प्रकार, गोलीय त्रिभुजों के गुण-धर्मो को विश्लेषित कर के बहुत सारे सूत्रों के विन्यास किये जा सकते हैं । इसके पठन से अंतरिक्षीय स्थितियों का अध्ययन किया जाता है । खगोलीय सर्वेक्षण में इस विषय का बहुत बड़ा महत्व है ।

क्षेत्रमिति को मेन्सुरेशन के रूपान्तरण के रूप में अपनाया गया है, जबकि सही रूपांतरण आकृतिमिति होना चाहिए । इस विषय के अन्तर्गत पृष्ठीय व गोलीय आकृतियों का क्षेत्रफल, घनफल व सतहीय पृष्ठफल इत्यादि की गणना सम्बन्धी तत्वों की शिक्षा ग्रहण की जाती है । चित्रीकरण का भी व्यवहारिक जगत में बहुत ज्यादा उपयोग है । चित्रीकरण का मूल तत्व है एक वर्गमीटर वर्गाकृतियों का समूह । अनियंत्रित आकृतियों का क्षेत्रफल जानने के लिए वर्गावली का ही उपयोग किया जाता है ।

निष्कर्ष के रूप में यह कहना सामयिक है कि सामाजिक व्यक्तियों को ज्यामितीय संस्कार से अवश्य सुसंस्कृत किया जाना चाहिए ।

* * *

प्यारे पौधे

श्रेष्ठ कथन है इस धरती पर
जीवन के रक्षक हैं पौधे
धीर, गंभीर और सहनशील
पृथ्वी का श्रृंगार हैं पौधे

शुद्ध ऑक्सीजन हमको देकर
गैस जहरीली पीते पौधे,
स्वयं प्रदूषण में जीवित रहकर
करते दूर प्रदूषण पौधे ।

प्रकाश संश्लेषण क्रिया के द्वारा
भोजन स्वयं बनाते पौधे,
''वाष्पोत्सर्जन'' क्रिया के द्वारा
जल वृष्टि में सहायक पौधे ।

जलवायु को आर्द्र बनाकर
भू-संरक्षण करते पौधे,
जल का स्तर ऊँचा रखकर
बाढ़ नियंत्रण करते पौधे ।

औषधि, चारा लकड़ी, ईंधन
रोजगार दिलवाते पौधे,
लाभ दिलाते उद्योगों में
सुख समृद्धि लाते पौधे

सुन्दर-अनुपम दृश्य दिखाकर
स्वास्थ्य लाभ करवाते पौधे
अपना जन-जीवन अर्पित करके
जन-जीवन को हैं बचाते पौधे ।

काट रहे क्यों इन पौधों को
जीवन का आधार हैं पौधे,
प्यार करो तुम इन पौधों से
प्राण हैं सबके प्यारे पौधे ।

शाह आलम सिद्दिकी
१५, रेस्ट हाऊस, बिछिया रेलवे कालोनी,
गोरखपुर - 273 012

कम्प्यूटर गणित में आंकड़ा प्रदर्शन

श्यामलाल धीमान
प्रवक्ता भौतिकी, राजकीय स्नातकोत्तर -
महाविद्यालय, कोटद्वार,
पौड़ी, (उ.प्र.) - 246149.

जनवरी-मार्च, 1991 अंक में इस लेखक का द्वयलव गणित पर लेख प्रकाशित हुआ था । अब, इस पद्धति के संगणक (कम्प्यूटर) में उपयोग पर उससे आगे की महत्त्वपूर्ण आधारभूत जानकारी प्रस्तुत है ।

कम्प्यूटर मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं - अनुरूप (अनालोग) और अंकीय (डिजिटल) । इन दोनों के मिले जुले रूप को मिश्रित (हायब्रिड) कम्प्यूटर कहा जाता है । अंकीय कम्प्यूटरों में द्वयलव संख्या पद्धति का उपयोग होता है । यह कम्प्यूटर केवल दो ही संकेतों से बने निर्देश को समझता है । चूंकि द्वयलव संख्या पद्धति में भी दो संकेत '०' एवं '1' प्रयुक्त होते हैं, अत: यह पद्धति कम्प्यूटर के लिए उपयुक्त है । '०' एवं '1' में प्रत्येक को द्विक या बिट कहा जाता है । कम्प्यूटर के लिए द्विक एकदम प्रारम्भिक इकाई होती है । एक द्विक से हमें अधिक सूचना नहीं मिलती । प्राथमिक सूचना तो हमें द्विक समूह से ही मिलती है । इस समूह में द्विक विभिन्न प्रकार से सज सकते हैं । द्विक समूह को कम्प्यूटर शब्द कहा जाता है । इस प्रकार, कम्प्यूटर शब्द ही वह प्राथमिक इकाई होती है जिसे कम्प्यूटर क्रियान्वित करता है ।

विभिन्न प्रकार के कम्प्यूटरों में शब्द जितने अधिक द्विकों से मिलकर बनता है, उसका आकार उतना ही अधिक होता है । शब्दाकार से कम्प्यूटर की सामर्थ्य का भी पता चलता है । एक 16 द्विक कम्प्यूटर आँकड़ों एवं निर्देशों को 16 द्विकों वाले शब्दों में क्रियान्वित करता है । बड़े कम्प्यूटरों में 'शब्द' से अभिप्राय द्विकों के ऐसे समूह से होता है जिसमें 32 अंक होते हैं । इस प्रकार, ऐसे कम्प्यूटरों के लिए 16 द्विकों से 'अर्द्ध शब्द' तथा 64 द्विकों से 'द्विगुणित शब्द' बनता है ।

किसी माइक्रो कम्प्यूटर में 'शब्दाकार' और 'आँकड़ा प्रदर्श' को 'बाइट' के रूप में प्रकट किया जाता है । 'बाइट' 8 द्विकों के समूह से मिलकर बनती है । यदि किसी माइक्रो कम्प्यूटर में शब्दाकार 8 द्विकों का है, तो शब्द में केवल एक 'बाइट' होगी । इस स्थिति में 'शब्द' एवं 'बाइट' अन्तर परिवर्तनीय होते हैं । 16 द्विकी माइक्रो कम्प्यूटर का शब्दाकार दो बाइट का होता है (चित्र - 1)

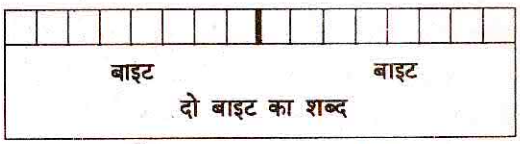

चित्र - 1 कम्प्यूटर शब्द

चूंकि अंकीय कम्प्यूटर सभी निर्देशों को '०' एवं '1' की सहायता से ही समझता है, अत: धनात्मक एवं ऋणात्मक द्वयलव संख्याएं भी इन्हीं संकेतों द्वारा प्रदर्शित होती हैं । धनात्मक अथवा ऋणात्मक द्वयलव संख्या प्राप्त करने के लिए पहले दशमलव संख्या को द्वयलव में रूपान्तरण करना आवश्यक होता है । इसके लिए हम दशमलव संख्या को 2 से भाग देकर भागफल और शेष प्राप्त करते हैं । प्राप्त शेष द्वयलव संख्या का दायें से प्रथम द्विक होगा । अब भागफल को २ से भाग देकर पुन: द्वितीय भागफल और शेष प्राप्त करते हैं । यहाँ प्राप्त शेष द्वयलव संख्या का द्विक होगा । इसी प्रकार, आगे भी यही प्रक्रिया दोहराते जाते हैं जब तक कि भागफल शून्य न प्राप्त हो जाये । उदाहरण के लिए, 25 को द्वयलव संख्या में बदलने के लिए निम्न प्रकार अग्रसर होंगे -

2	25		
2	12	शेष	1
2	6	शेष	0
2	3	शेष	0
2	1	शेष	1
	0	शेष	1

इस प्रकार, $(25)_{10}$ $(11001)_2$

अब हम धनात्मक एवं ऋणात्मक पूर्णांकों के द्वयलव संख्या पद्धति में प्रदर्शन पर विचार करते हैं।

धनात्मक पूर्णांक : मान लीजिए अब हम 25 का द्वयलव संख्या में इस प्रकार रूपान्तर चाहते हैं कि निर्मित कम्प्यूटर शब्द में 8 द्विक हों। चूंकि 25 के द्वयलव रूपान्तरण से 11001 प्राप्त होता है जिसमें 5 द्विक हैं, अत: 8 द्विकी रूपान्तरण के लिए इसके बायीं ओर आवश्यकतानुसार द्विक '०' बढ़ा लिये जाते हैं। अब कम्प्यूटर शब्द 00011001 बनता है जिसमें 8 द्विक हैं। इस प्रदर्शन में सबसे बाईं ओर का द्विक '०' संख्या के धनात्मक होने को प्रकट करता है।

सारणी - 1 में विभिन्न शब्दाकारों (वर्ड लैंथ) में प्रदर्शित हो सकने वाली धनात्मक संख्याओं को दिया गया है।

सारणी - 1

शब्दाकार (द्विकों में)	अधिकतम द्वयलव संख्याएं	तुल्य दशमलव संख्याएं	2^n के रूप में प्रदर्शन
2	01	1	2^1-1
3	011	3	2^2-1
4	0111	7	2^3-1
8	01111111	127	2^7-1
16	0111111111111111	32767	2^{15}-1

सारणी से स्पष्ट है कि n-द्विक शब्दाकार वाले कम्प्यूटर में प्रदर्शित हो सकने वाली कुल धनात्मक संख्याएं $(2^{n-1} - 1)$ होंगी। ज्ञातव्य है कि n द्विकों में से एक द्विक द्वयलव संख्या के चिन्ह को प्रकट करने में प्रयुक्त होता है।

ऋणात्मक पूर्णांक : ऋणात्मक संख्या प्रदर्शन के लिए तीन प्रणालियाँ प्रयुक्त की जा सकती हैं। ये निम्नलिखित हैं -

(१) चिन्ह और परिमाण प्रणाली,
(२) एक की पूरक संख्या प्रणाली,
(३) दो की पूरक संख्या प्रणाली।

चिन्ह और परिमाण द्वारा ऋणात्मक द्वयलव संख्याओं को ठीक उसी प्रकार प्रदर्शित किया जाता है, जिस प्रकार धनात्मक द्वयलव को किया जाता है। अन्तर केवल इतना होता है कि जहाँ धनात्मक संख्या को प्रदर्शित करने में द्विक संकेत '०' प्रयुक्त होता है, वहां ऋणात्मक संख्याओं के लिए द्विक संकेत '1' प्रयुक्त किया जाता है। यह संकेत संख्या के सबसे बायीं ओर प्रयुक्त होता है। चूंकि 27 को द्वयलव संख्या में 8-द्विकी रूपान्तरण करने पर 00011011 प्राप्त होगा, अत: - 27 का द्वयलव रूपान्तरण 10011011 होगा। इस प्रकार, अधिकतम ऋणात्मक संख्या जो 8 द्विकी शब्द में प्रदर्शित की जा सकती है, 11111111 होगी। यह ऋणात्मक द्वयलव संख्या - 255 के तुल्य है।

एक की पूरक संख्याओं द्वारा ऋणात्मक द्वयलव संख्याओं को प्रदर्शित करने से पहले हम उनको परिभाषित करेंगे। ऐसा करने से पूर्व हम दशमलव संख्या पद्धति में 9 की पूरक संख्या ज्ञात करते हैं। किसी संख्या की 9 की पूरक संख्या, दी गयी संख्या के प्रत्येक अंक को 9 में से घटाकर प्राप्त की जाती है। 10 की पूरक संख्या 9 की पूरक संख्या में एक जोड़कर प्राप्त की जाती है। मान लीजिए, हमें 327 की 9 की पूरक संख्या ज्ञात करनी है तो यह 999 में से 327 को घटाकर प्राप्त होगी जो 672 के बराबर होगी। 327 की 10 की पूरक संख्या 672 + 1 = 673 के बराबर होगी। चूंकि

$327 + 673 = 10^3$, अतः किसी संख्या और उसकी 10 की पूरक संख्या का योग 10^n के रूप में लिखा जा सकता है, जहाँ n संख्याओं में प्रयुक्त अंकों की संख्या को प्रकट करता है ।

जिस प्रकार दशमलव संख्या की 9 की पूरक संख्या प्राप्त करने के लिए संख्या के प्रत्येक अंक को 9 में से घटाना होता है, उसी प्रकार द्वयलव संख्या की एक की पूरक संख्या प्राप्त करने के लिए संख्या के प्रत्येक द्विक को '1' में से घटाते हैं । प्राप्त संख्या '1' की पूरक कहलाती है । यह दी गयी संख्या का ऋणात्मक रूप होती है । इस प्रकार, - 28 को एक की पूरक प्रणाली में प्रदर्शित करने के लिए हम निम्न प्रकार अग्रसर होंगे -

(1) 28 को द्वयलव संख्या में रूपान्तरित करेंगे । इससे हमें द्वयलव संख्या 11101 प्राप्त होगी ।

(2) अब इसको 8-द्विक शब्द में रूपान्तरित करेंगे जो 00011100 के बराबर प्राप्त होता है ।

(3) प्राप्त 8 द्विक शब्द में प्रत्येक द्विक को '1' में से घटाते हैं । इस प्रकार,
11111111 - 00011100 = 11100011

अतः, - 28 द्वयलव संख्या पद्धति में 11100011 के तुल्य होता है ।

द्वयलव संख्या पद्धति में ऋणात्मक संख्याओं को दो की पूरक संख्याओं द्वारा भी प्रदर्शित किया जाता है । इसके लिए हम पहले उपरोक्त की भांति क्रिया करते हैं और तब प्राप्त फल (एक की पूरक) में '1'जोड़ देते हैं । प्राप्त योग दो की पूरक संख्या होती है जो दी गयी संख्या का ऋणात्मक रूप होती है । उपरोक्त उदाहरण से - 28 को दो की पूरक संख्या प्रणाली में (11100011 + 1 = 11100100) से प्रदर्शित किया जायेगा ।

कम्प्यूटर गणित में ऋणात्मक संख्या प्रदर्शित करने के लिए तीनों ही प्रणालियाँ प्रयुक्त नहीं होती हैं । वस्तुतः, इसके लिए दो की पूरक प्रणाली ही अधिक उपयुक्त है, क्योंकि केवल इसी प्रणाली में किसी भी दशमलव संख्या को केवल एक ही द्वयलव संख्या में रूपान्तरित किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, यदि हम +० को 8 द्विक शब्द में प्रदर्शित करें, तो 00000000 प्राप्त होगा । परन्तु चिन्ह एवं परिमाण प्रणाली में - ०, 10000000 द्वारा प्रदर्शित होगा । चूंकि +० और -० में कोई भेद नहीं है और दोनों एक दूसरे के तुल्य हैं, अतः दोनों एक ही रूप में प्राप्त होने चाहिए, परन्तु यहां '०' दो भिन्न रूपों में प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार, एक की पूरक प्रणाली में -०, को 11111111 द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, अतः यहां भी एक ही संख्या '०' को प्रदर्शित करने के दो रूप प्राप्त होते हैं ।

अब यदि -० को दो की पूरक संख्या में प्रदर्शित किया जाये तो हम 00000000 की एक की पूरक संख्या 11111111 में '1' जोड़ेंगे, जिससे हमें 100000000 प्राप्त होगा । चूंकि कम्प्यूटर में शब्दाकार ८ द्विकों का है, अतः यहाँ नौवें स्थान पर प्राप्त हासिल छोड़ दिया जाता है और हमें संख्या 00000000 प्राप्त होजाती है । यह संख्या +० के तुल्य है । इस प्रकार, -० और +० दो अलग - अलग संख्याएं न होकर एक ही संख्या होती है और इसीलिए कम्प्यूटर गणित में ऋणात्मक द्वयलव संख्याओं को दो की पूरक संख्या में निरूपित किया जाता है । अतः, यह निष्कर्ष निकलता है कि कम्प्यूटर गणित में दो की पूरक प्रणाली को प्रयोग कर गणनाएं सुगम हो जाती हैं, जब कि एक की पूरक प्रणाली और चिन्ह एवं परिमाण प्रणाली ऐसा करने में अनुपयुक्त एवं असुविधाजनक होती है ।

अब हम एक उदाहरण द्वारा द्वयलव गणित की घटाने की प्रक्रिया द्वारा कम्प्यूटर क्रिया समझाते हैं । मान लीजिए, हम 10001 में से 1001 घटाना चाहते है । यहां हम द्वयलव गणित से 10001 - 1001 = 1000 सीधे प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु चूंकि कम्प्यूटर घटाना नहीं जानता, अतः

शेष पृष्ठ-24 पर

बेर की बहु उपयोगी फसल

डॉ. आर. के. जैन एवं आर. के. चौधरी
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ - 226001

बेर के फल की विभिन्न जातियों का उपयोग खाने में, आयुर्वेद की दवाइयों, पथ्य आदि में तो होता ही है, उसके लगभग हर प्रकार की मिटटी में जल्दी ही उग आने के कारण वानिकी में भी इसके उपयोग के लाभ पर शोध प्रस्तुत है ।

वर्तमान युग में ईंधन के लिए लकड़ी एक समस्या है । अविकसित और उन्नतिशील देशों में लकड़ी ही ईंधन का मुख्य स्रोत है । इस समय, लगभग 84 करोड़ जनसंख्या के लिए 0.6 टन लकड़ी ईंधन के लिए प्राप्त हो पाती है, जबकि 410 लाख टन ईंधन के लिए लकड़ी की आवश्यकता है । कौल और गुरूमूर्ति (1981), कृष्णा एवं रामास्वामी (1932) और लिमये एवं सेन (1968) ने जंगली पौधों की कुछ जातियों से प्राप्त ईंधन के गुणों का अध्ययन किया है, किंतु अभी तक बेर (जिजाइफस) प्रजातियों पर ईंधन संबंधी कोई सूचना उपलब्ध नहीं है । जिजाइफस एक ऐसा पौधा है जिसका प्रजनन बीज द्वारा होता है, और यह विभिन्न प्रकार की मिट्टी और जलवायु में ठीक ढंग से वृद्धि करता रहता है । इसलिए, इसके ईंधन गुणों का अध्ययन अत्यंन्त वांछित है ।

जिजाइफस करीब 1200 मीटर ऊंचाई तक नम, उष्ण, शुष्क और अर्ध शुष्क, गहरी घाटी वाली भूमि, शैल-भूमि और बालुई मिट्टी, विशेषकर राजस्थान के पश्चिमी भागों में अच्छी तरह से उगाया जा सकता है । यह पौधा तीव्र वृद्धि, फलदार, जानवरों के लिए चारा, ईंधन और मकान की लकड़ी और दवाइयों के रूप में उपयोग में आने कारण, गरीब ग्रामवासियों में बहुत लोकप्रिय है । इस पौधे में एक अच्छा स्थूल गुण है, और यह अपने मूल-चूषकों एवं मूलमुंडों द्वारा सोत्साह वृद्धि करता रहता है । उपयुक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, इस पौधे के ईंधन गुणों का अध्ययन करने के लिए अनुसंधान कार्य आरंभ किया गया ।

जिजाइफस प्रजातियों के पांच नमूने उ.प्र., मध्यप्रदेश, राजस्थान से निष्क्रिय मौसम (जनवरी-मार्च) 1985 में एकत्र किये गये । विभिन्न प्रजातियों के समसंभाविक चुने हुए पौधों के तनों के मध्य बिन्दु से पत्तियों के नमूने एकत्र किये गये । प्रत्येक नमूने में लगभग 100-125 पत्तियां थीं ।

जिजाइफस ओनोषीलिया, जि. जाइलोपाइरा, जि. मौउरूसियाना, जि. न्यूमुलेरिया और जि. ग्लैबरनिगा के करीब 2-3 सें.मी. व्यास के तने के हिस्से काटे गये और उनको 80^{o} से. स्थिर तापमान पर 48 घन्टे तक कन्दु में सूखा रखकर, उनमें नमी की मात्रा निकाली गयी । तनों के 1.5 सेंमी. गोल हिस्सों को ग्लीसिरीन में रखकर उनके भार में होनेवाली कमी द्वारा उनका घनत्व निकाला गया । नमूनों की कुछ मात्रा को पीसकर 30 मि.मी. छेदवाली जालीदार छन्नी द्वारा छाना गया । पिसी हुई सामग्री को टिकिया बनाकर आक्सीजन बाम्ब कैलोरी मीटर में जलाया गया । 2 ग्राम पिसे हुए नमूने को 550^{o} से. पर 4-6 घन्टे तक मपल भट्टी में रखकर राख की मात्रा का आंकलन किया गया । बावले (1935), एवं जेल टेक आटो II विधियों द्वारा सम्पूर्ण कार्बनिक प्रांगार और नाइट्रोजन का विश्लेषण किया गया । सभी विश्लेषण दो-दो बार किये गये ।

पत्तियों को नल के पानी से धोकर दुबारा आसुत जल से धोया गया और 70^{o} से. पर 48 घन्टे तक कन्दु में सुखाया गया । इस प्रकार से सुखाकर चक्की में पीसकर, उन्हें २ मि.मी. छेदवाले जाल से प्रवाहित करके विधित कूतियों में एकत्र कर लिया गया । नाइट्रोजन का जेलटेक आटो II विधि से, फासफोरस का बैनडो मालीब्डेट विधि से, पोटेशियम, कैल्शियम और सोडियम का ज्वालाभामन विधि से आंकलन किया गया । परिणाम की गणना शुष्क भार के आधार पर की गयी ।

परिणाम एवं परिचर्चा : पोषक खनिज संरचना के आधार पर जिजाइफस प्रजातियों की पत्तियों की खनिज संरचना में बहुत कम भिन्नता पायी गयी । जि. ओनोफीलिया में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम की सान्द्रता अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक पायी गयी । नाइट्रोजन की सांद्रता 2.80 - 3.10% के बीच पायी गयी । स्मिथ (1976) के अनुसार अधिकांश झाड़ी वाले पौधों और वृक्षों में नाइट्रोजन की सान्द्रता 2.0 से 4.5% तक पायी जाती है । पोटाश की मात्रा 1.62 से 1.92% तक पायी गयी । जिजाइफस की अन्य प्रजातियों में सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम की मात्रा में बहुत कम भिन्नता पायी गयी । विभिन्न प्रकार की भूमि भी पौधों के पोषक तत्वों की संरचना को प्रभावित करती है, लेकिन अनुवांशिकीय गुणों को भूमि की भिन्नता प्रभावित नहीं करती है । जिजाइफस की विभिन्न प्रजातियों में पोटेशियम और सोडियम के अनुपात में काफी भिन्नता रही है, किन्तु जि. मोउरूसियाना में सोडियम और क्षारीय गुणों की सहनशीलता सबसे अधिक पायी गयी ।

सारणी - २ से यह पता चलता है कि जि. ओनोफीलियो में न्यूनतम आर्द्रता और अधिकतम राख की मात्रा पायी गयी । ऐसा देखा गया है कि विभिन्न प्रजातियों की राख की प्रतिशत मात्रा में अधिक विषमता है, और अधिक राख की मात्रा वाली प्रजातियों में दहन ऊष्मा कम हो गयी, जो अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अंततः कैलोरी की मात्रा को भी कम कर देती है ।

सिलिका की मात्रा 0.20 से 1.40% तक पायी गयी है जो कि राख की मात्रा के समानुपात में है । खू और अन्य सहयोगी (1982) के मानकों के अनुसार जि. आनोफलिया और जि. मउरूसियाना अन्य प्रजातियों की अपेक्षा सिलिका-युक्त पाये गये । जिजाइफस की सभी प्रजातियों में प्रांगार की उपस्थिति पायी गयी जो 42.75 से 58.80% के बीच थी । इन बातों से यह संकेत मिलता है कि अधिक प्रांगार वाली प्रजातियों में काष्ठागार की अधिक मात्रा प्राप्त होती है जिसकी मात्रा दहन क्रिया में स्थिर रहती है । साथ ही साथ, सभी प्रजातियों में नाइट्रोजन की सीमित मात्रा का अवलोकन किया गया, जिसके जलने पर नुकसान करनेवाली नाइट्रोजन युक्त गैसें भी नहीं निकलती हैं ।

विभिन्न जलवायु वाले जिजाइफस की अलग-अलग जातियों के ईंधन गुण को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष निकलता है कि जिजाइफस की वे जातियाँ जिनकी कैलोरी मात्रा व घनत्व अधिक हो, जैविक मात्रा व राख का अनुपात अधिक हो तथा सिलिका की मात्रा कम हो, वे ईंधन के लिए अधिक उपयुक्त हैं । प्रजनन में सुविधा व आसानी, तीव्र वृद्धि, अधिकतम जैविक मात्रा और अन्य बहुउपयोगी गुणों के कारण जिजाइफस को क्षेत्रिक वानिकी के उपयोग में लाया जा सकता है ।

सारणी - 1. जिजाइफस प्रजातियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की संरचना (% शुष्क भार के आधार पर)

क्र.सं.	प्रजातियां	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटेशियम	सोडियम	कैल्शियम	मैग्नीशियम	पोटेशियम/ सोडियम अनुपात
1.	जि. ओनोफलिया (मिल)	3.10	0.32	1.92	0.65	1.30	0.52	2.95
2.	जि. जाइलोपाइरा (बिल्ड)	2.95	0.30	1.62	0.58	1.25	0.54	2.79
3.	जि. मैउरूसियाना (लैम्क)	3.00	0.28	1.78	0.59	1.20	0.50	3.18
4.	जि. न्यमुलेरिया (वर्न. एम डब्लू. एण्ड ए.)	2.89	0.28	1.80	0.61	1.23	0.56	2.95
5.	जि. ग्लैबरेनिमा (लैम्क)	2.80	0.26	1.75	0.62	1.28	0.53	2.82

सारणी - 2. जिजाइफस की कुछ प्रजातियों के ईंधन गुण

क्र.सं.	प्रजातियां	नाईट्रोजन	नमी %	घनत्व ग्रा./घन सें.मी.	राख %	सिलिका %	कार्बनिक प्रांगार	जैविक मात्रा/ राख	दहन ऊष्मा कि.जू./ग्रा
1.	जि. ओनोफलिया (मिल)	0.890	19.60	0.76	5.3	1.40	42.75	18.9	18.26
2.	जि. जाइलोपाइरा (बिल्ड)	0.700	21.00	0.86	3.7	0.50	43.50	27.0	19.56
3.	जि. मैऊरूसियाना (लैम्क)	0.756	25.20	0.77	4.2	1.30	44.25	23.8	18.32
4.	जि. न्यमुलेरिया (वर्न. एम डब्लू. एण्ड ए.)	0.280	31.21	0.69	3.2	0.20	49.20	31.3	19.32
5.	जि. ग्लैबरेनिमा (लेम्क)	0.252	26.32	0.79	2.6	0.70	58.80	38.5	18.11

संदर्भ :

जैक्सन, एम.एल. (1976) मिट्टी का रासायनिक विश्लेषण, प्रैन्टिस हाल आफ इंडिया, न्यू दिल्ली

कौल, आर.एल.और गुरूमूर्ति के. (1981) उर्जा के लिए वृक्षारोपण, साईंस टुडे, अक्टूबर 43-46.

खूं.के.सी.यंग. एफ. ओ. और पेक, टी.बी. (1982) द सिलिका कन्टेन्ट आफ द कामर्शियल टिम्बर आफ पेननसुलर मलेशिया. द. मलेशिया फोरस्टर, 45:49-54 ।

कृष्णा, एस. और रामास्वामी, एस. (1932) कुछ भारतीय लकड़ियों की दहन ऊष्मा, फारेस्ट बुलेटिन नं. 79, रसायन सिरीज सेन्ट्रल पब्लिकेशन ब्रांच, भारत सरकार, कलकत्ता

लिमये, वी.डी. और सेन, बी.आर. (1966) भारतीय लकड़ियों का भार एवं घनत्व, भारतीय वन अभिलेख (नयी सिरीज) टिम्बर मेकैनिक, 1 (4) भारत सरकार प्रेस, न्यू दिल्ली ।

नीनन, एम. और स्टीनबैक, के (1979) नौ प्रकार की लकड़ियों की दहन ऊष्मा. फारेस्ट सांइस - 25:455-461

सजदक, आर.एल. वाई. जेड. मोर्ज, जी.डी.और जुर्गनसन, एम. एफ.जेड (1981), ऊर्जा के लिए वन जैविक मात्रा, एक अजीवाश्म ईंधन स्रोत (क्लास), कोनाल्ड ए.डी. ए.सी.एस. सेमीनार सिरीज 144 वाशिंग्टन डी.सी.पृ. 21-48

स्मिथ, एन.ई. (1976), लीफ एनालिसिस - ए ग्रोथ इंडिकेटर, कम्बाइन्ड, प्रोसीडिंग इंटरनेशनल प्लान्ट प्रोपोगेट्स सोसाइटी 26:190-193.

विमल, ओ.पी. (1980), स्टेट आफ द आर्ट रिपोर्ट डी.एस.टी.भारत सरकार, न्यू दिल्ली ।

वाक्ले, ऐ (1935), मिट्टी में कार्बनिक प्रांगार और नाईट्रोजन ज्ञात करने की विधि, जे. एग्री. साइंसा (इग्लैंड) 25:598-609.

* * *

भूकम्प : एक विवेचन

डा. वासुदेव प्रसाद यादव
18, अशोक नगर, आगरा - 282 002.

20 अक्टूबर, 1991 को उत्तरकाशी में आये विनाशकारी भूकम्प के परिपेक्ष्य में, ''वैज्ञानिक'' के जनवरी-मार्च, 1991 अंक में दी गयी भूकम्प विषयक जानकारी का यह लेख परिपूरक है ।

भारत का मौसम विज्ञान विभाग देश भर में न केवल मौसम संबन्धी जानकारी एकत्रित करता है, बल्कि भूकम्प संबन्धी अध्ययन करने का दायित्व भी इसी विभाग का है । पिछले कई दशकों से भारतीय मौसम विभाग के भूकम्पवेत्ता, कई भारतीय विश्वविद्यालयों और कई सरकारी एजेन्सियों - जैसे, तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग, भारतीय सर्वेक्षण विभाग, भारतीय भू वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग, आदि से मिलकर अथवा स्वतंत्र रूप से भूकम्प संबन्धी आकड़े जुटा रहे हैं । देश भर में, उपयुक्त भूकम्प संवेदनशील क्षेत्रों मे भूकम्पलेखियों (सिस्मोग्राफ) की मदद से ये आंकड़े जमा किये जा रहे हैं । इस समय देशभर में चालीस से अधिक वेधशालाओं में भूकम्प संबन्धी आंकड़े जमा किये जाते हैं ।

लगभग दो दशक पूर्व, दिल्ली और उसके आसपास चार ऐसी वेधशालाएं स्थापित की गयी थीं । पहली वेधशाला दिल्ली में 'रिज' पर है, दूसरी गुड़गांव में साहना नामक स्थान पर, तीसरी रोहतक में और चौथी सोनीपत में काम कर रही है ।

पृथ्वी के भीतर जिस बिन्दु से भूकम्पी तरंगें उत्पन्न होती हैं, उसे भूकम्प केन्द्र कहते हैं । इस केन्द्र से ठीक ऊपर धरातलीय स्थान को अधि-केन्द्र (एपीसेंटर) कहते हैं । अधि-केन्द्र पर भूकम्प का धक्का सबसे तीव्र होता है । इस केन्द्र के आसपास के क्षेत्र में विनाश सबसे अधिक होता है । इस केन्द्र से दूर की ओर भूकम्पी-तरंगों की शक्ति शनैः - शनैः कम होती जाती है और क्षति भी कम होती जाती है ।

भूकम्प-तरंगें तीन प्रकार की होती हैं; प्राथमिक, माध्यमिक और धरातलीय ।

(1) प्राथमिक तरंगें : इन तरंगों की गति 8 से 14 किमी. प्रति सेकंड है, जो सबसे अधिक है । ये तरंगें विनाशलीला उपस्थित करती हैं । पृथ्वी के गर्भ में, ठोस भाग में इनकी गति तीव्र होती है जब कि द्रव भाग में इनका वेग बहुत कम हो जाता है ।

(2) माध्यमिक तरंगें : इन तरंगों की गति 4 से 6 किमी. प्रति सेकंड होती है । ठोस भाग में ये तरंगें बहुत गहराई तक जाती हैं, लेकिन तरल भाग में गायब हो जाती हैं । इन तरंगों से पृथ्वी का एक बड़ा भाग अप्रभावित रहता है ।

(3) धरातलीय तरंगें : इन तरंगों की गति 3 से 4 किमी. प्रति सेकंड होती है । ये तरंगें सबसे अधिक प्रलयकारी होती हैं । द्रव तथा ठोस (जल-थल), दोनों पर एक जैसा प्रभाव डालती हैं । ये तरंगें पृथ्वी की परिक्रमा करने के पश्चात अधिकेन्द्र पर पहुँचती हैं । ये तरंगें धरातल के ऊपरी भाग में चला करती हैं और इन्हें सबसे लम्बा मार्ग तय करना पड़ता है, जिससे इन्हें सबसे लम्बी तरंगें कहते हैं ।

भूकम्प-केन्द्र से प्रारंभ होकर तीनों प्रकार की तरंगें सभी दिशाओं में चलती हैं । भूकम्प-केन्द्र की गहराई जितनी अधिक होगी, वहाँ से उत्पन्न भूकम्प की शक्ति उतनी ही अधिक होगी । साथ ही, ऐसे भूकम्प-केन्द्र से निकली तरंगें, दूर-दूर तक गहरी मार करेंगी ।

1931 में रिच्टर ने भूकम्प की तीव्रता मापने के लिए एक पैमाना प्रस्तुत किया था, जिसे 'रिच्टर पैमाना' कहते हैं ।

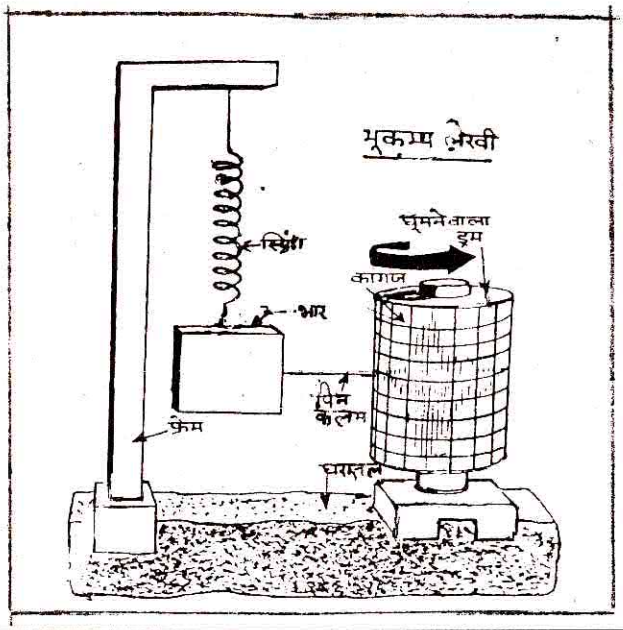

तीव्रता		उच्चतम परिमाण (रिक्टर पैमाने में)	धरातन पर प्रभाव
1.	यांत्रिक	3.5 से कम	केवल भूकम्पलेखी पर ही दर्ज होता है ।
2.	क्षीण	3.5	केवल संवेदनशील व्यक्ति ही घर की ऊपरी छत पर महसूस करते हैं ।
3.	हल्का	4.2	विश्राम करता हुआ व्यक्ति महसूस करता है ।
4.	थोड़ा तीव्र	4.8	सोया व्यक्ति जाग जाता है तथा खंबे और पेड़ झुक जाते हैं ।
5.	तीव्र	4.9 से 5.4	टँगी वस्तुएं झुक जाती हैं ।इस प्रघात को सभी महसूस करते हैं ।
6.	प्रचंड	5.5 से 6.1	दीवारों में दरारें पड़ जाती हैं और मकानों को क्षति होती है ।
7.	विध्वंसकारी	6.9	धरती फट जाती है । मकानों की नींवें हिल जाती हैं ।
8.	भयंकर	7.0 से 7.3	पृथ्वी फट जाती है, इमारतें गिर जाती हैं, रेल की पटरियाँ तथा पुल नष्ट हो जाते हैं ।
9.	महाभयंकर	7.4 से 8.1	सभी निर्माण कार्य ध्वस्त हो जाते हैं ।
10.	महाकाल	8.1 से 9.0	सर्वनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

भारत में भूकम्प

धरती की पपड़ी का अध्ययन करके वैज्ञानिकों
ने बताया है कि संपूर्ण हिमालय क्षेत्र और उत्तरी भारत
भूकम्प प्रभावित क्षेत्र में आता है। भारत उपमहाद्वीप
के भूकम्पी मानचित्र को देखने पर दो बातें तत्काल
स्पष्ट होती हैं। पहली तो यह कि संपूर्ण हिमालय
क्षेत्र श्रीनगर, लेह, लद्दाख, मण्डी, कुमाऊँ, काठमांडू,
गुवाहाटी, बोमडीला, कोहिमा, इम्फाल और अगरतला
और गंगा तथा सिन्ध का मैदान भूकम्प केन्द्रों से भरा
पड़ा है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात है, इस क्षेत्र में
भूगर्भीय दोष-क्षेत्रों का प्रसार और संख्या। इन क्षेत्रों
में भूकम्प-केन्द्र धरती में 70 किलोमीटर तक की
गहराई में हैं। भूकम्प-केन्द्र की गहराई जितनी अधिक
होगी, वहाँ से उत्पन्न भूकम्प की शक्ति भी उतनी ही
अधिक होगी। साथ ही, ऐसे केन्द्र से निकली
भूकम्प-लहरें दूर-दूर तक गहरी मार कर सकेंगी
हिमालय क्षेत्र तथा गंगा-यमुना एवं ब्रह्मपुत्र के मैदानी
क्षेत्रों में फैले सैकड़ों भूकम्प-केन्द्र रिक्टर पैमाने पर
6.5 या अधिक शक्ति के हैं। इससे कम शक्ति के
भूकम्प झटकों से जान-माल की कोई खास हानि नहीं
होती है और इनका हिसाब भी नहीं रखा जाता है।

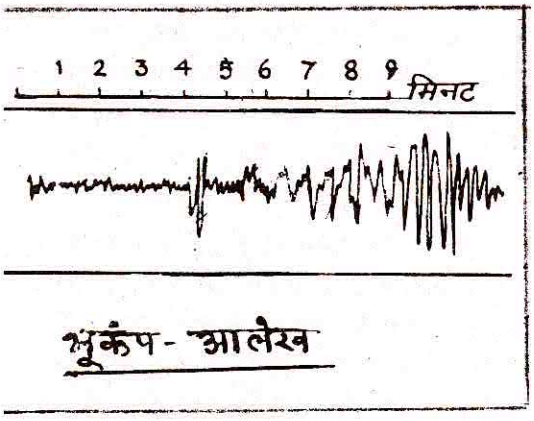

भू-वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि भारतीय
उपमहाद्वीपीय भू-पपड़ी अत्यन्त कठोर है और यूरेसियन
भू-पपड़ी के दक्षिणी छोर (तिब्बत) को यह पूरी शक्ति
से धक्का दे रही है। इन दोनों भू-पपड़ियों का आपस
में टकराव ही हिमालय की उत्पत्ति का कारण है। इन
दोनों भू-पपड़ियों के बीच, जो अपेक्षाकृत नरम भूभाग
है, वह भी लगातार उथल-पुथल और हलचल की
प्रक्रिया से गुजर रहा है अर्थात् यह मध्यक्षेत्र दो पाटों
के बीज घुन की तरह पीसा जा रहा है। नरम बनावट
की वजह से इस मैदानी क्षेत्र और हिमालय के दक्षिणी
भाग (शिवालीक) आदि में 40 के लगभग भू-दोष
अथवा गहराई में भू-दरारें (फ्रैक्चर और फाल्टें) हैं।
वैज्ञानिक अध्ययन से यह निश्चित हो चुका है कि ये
फ्रैक्चर और फाल्ट लाइनें दक्षिण से उत्तर की ओर
हैं। हिमाचल प्रदेश में मण्डी से शुरू होकर नाहन-रियासी
होते हुए ये लाइनें दक्षिण में सीधी उतरकर सोनीपत,
रोहतक और गुड़गांव को छूती हुई अरावती पर्वत-माला
में लोप हो जाती हैं। इन दोनों फाल्ट-लाइनों को
अरावली फाल्ट लाइनें भी कहते हैं। ये दोष पूरी तरह
सक्रिय हैं और इनमें भूगर्भीय हलचल निरंतर जारी
रहती है। इसी भूगर्भीय हलचल के कारण इस क्षेत्र
में भूकम्प आते रहते हैं।

भविष्य में भूकम्प संभावित क्षेत्रों में, नये
बननेवाले मकान भूकम्पसह बनाये जायें और
भवन-समूहों के आसपास काफी खुला क्षेत्र छोड़ा जाये
ताकि संकट के समय लोग शीघ्र घर छोड़कर यहाँ
आ सकें।

अनुसंधानों की वर्तमान स्थिति एवं कठिनाइयाँ

वैज्ञानिकों के पास अभी कोई ऐसी युक्ति
नहीं है, जिससे दो भू-पपड़ियों के आपस में रगड़
खाने से उत्पन्न हुए दबाव और इसमें होनेवाली क्रमशः
वृद्धि को कृत्रिम रूप से निष्क्रिय करने में सफल हो
सकें।

भूकम्प के कारणों एवं प्रभावों के अध्ययन
में भू-विज्ञान से लेकर इंजीनियरिंग तक के अनेक
विषयों के विशेषज्ञों द्वारा समायोजित अध्ययन की
जरूरत पड़ती है। भूकम्प की भविष्यवाणी की दृष्टि

से एक ही क्षेत्र (सीस्मिक जोन) में समान तीव्रता स्तर के भूकम्पों का निरीक्षण बहुत उपयोगी होता है ।

भूकम्प संबन्धी आंकड़े एकत्रित करने की परम्परा काफी पुरानी है । करीब सौ साल पहले भूकंप लेखी के विकास और पुन: साठ के दशक में 'विश्वस्तरीय मानकीकृत भूकंपीय सूचनातंत्र (वर्ल्डवाइड स्टैंडरडाइज्ड सिस्मोलॉजिकल नेटवर्क) की शुरूआत के उपरान्त पर्याप्त सुधार हुआ है और इन आंकड़ों में न केवल एकरूपता आयी है, बल्कि भूकम्पों को भूमिगत परमाणु विस्फोटों से अलग पहचान पाना भी संभव हो गया है ।

आधुनिक अनुसंधानों से पता चला है कि हर भूकम्प, अगले आनेवाले भूकम्प के आने में सहायक परिस्थितियों का सृजन करता है । साथ ही, हर बड़े भूकम्प के आने से पहले और बाद में महसूस किये जानेवाले झटकों का भी भविष्यवाणी से महत्त्वपूर्ण संबन्ध है । इन निष्कर्षों को वर्ष 1906 के सैनफ्रांसिस्को भूकम्प के निरीक्षणों के आधार पर सर्वप्रथम एच. एफ. रीड ने भूकम्प चक्र के रूप में बताया । रीड की इस परिकल्पना के अनुसार, एक ही फाल्ट-क्षेत्र में आनेवाले दो समान भूकम्पों के बीच इतना समय अवश्य होता है, जिससे पहले वाले भूकम्प के कारण तनाव में आयी हुई कमी पुननिर्मित हो सके ।

तनाव पुननिर्माण की इसी प्रक्रिया के कारण किसी बड़े भूकम्प के आने के ठीक पूर्व एवं बाद की अवधि में झटके महसूस होते हैं । भूकम्पी अंतराल की इसी अवधारणा के आधार पर केवल अमेरिका में ही 10 बड़े भूकम्पों की सही-सही भविष्यवाणी 1968 से 1988 के 20 वर्षों में कर पाना संभव हुआ ।

ज्वालामुखी विस्फोटों एवं उस क्षेत्र के भूकम्पों में प्रत्यक्ष संबन्ध वैज्ञेनिकों ने पाया है । उदाहरण के लिए, अमेरिका में 'रिन आफ फायर' के आसपास हुए ज्वालामुखी विस्फोटों का संबन्ध निकटवर्ती बड़े भूकंपों से सिद्ध हो चुका है ।

अब तक किये गये अन्वेषणों से पता चला है कि कुछ बड़े भूकम्पों में से अधिकांश का संबन्ध बड़े जलाशयों से रहा है और इस तरह के भूकंप अमेरिका, रूस और मिश्र में आ चुके हैं । वर्तमान में भारत की टेहरी बाँध परियोजना (उ.प्र.) यों ही हिमालय के भूकम्प सक्रिय क्षेत्र में स्थित है । वैज्ञानिकों की यह आशंका पूर्णत: निर्मूल नहीं कही जा सकती कि टेहरी बाँध का जलाशय, यदि बन गया, तो जल्दी ही इस क्षेत्र में किसी बड़े भूकम्प का कारण बनेगा । सर्वनाश से पूर्व, वैज्ञानिकों की इस चेतावनी की ओर ध्यान देना राष्ट्रीय हित में है ।

* * *

(पृष्ठ - 17 का शेष)

वह पहले 1001 की दो की पूरक संख्या प्राप्त करेगा और 10001 में जोड़ देगा । प्रक्रिया निम्न चरणों में होगी :

1) 10001 का 8 - द्विकी प्रदर्श प्राप्त करेगा जो 00010001 होगा ।

2) 1001 का 8 - द्विकी प्रदर्श प्राप्त करेगा जो 00001001 होगा ।

3) 00001001 की एक की पूरक संख्या प्राप्त करेगा जो 11110110 प्राप्त होगी ।

4) 11110110 में 1 जोड़ेगा और 00001001 की दो की पूरक संख्या 11110111 प्राप्त करेगा ।

५) अब कम्प्यूटर (00010001 + 11110111) को हल करके 100001000 प्राप्त करेगा । चूंकि यहाँ कम्प्यूटर 8 - द्विकों में व्यंजक प्राप्त करता है, अत: नौवे स्थान के द्विक को छोड़ देगा और उत्तर प्राप्त करेगा 00001000 जो उपरोक्त द्वयलव गणित से प्राप्त उत्तर के बराबर है ।

चूंकि भाग की क्रिया भी बार-बार घटाने की प्रक्रिया के समतुल्य होती है, अत: भाग की क्रिया कम्प्यूटर द्वारा बार-बार दो की पूरक संख्या को क्रमश: प्राप्त योगफलों में जोड़कर सम्पन्न की जाती है । चूंकि गुणा की क्रिया भी बार-बार जोड़ने के समतुल्य होती है, अत: स्पष्ट है कि कम्प्यूटर गणित में योग करने की क्रिया ही मुख्य है । अन्य सभी क्रियाएं इसी एक क्रिया से सम्पन्न होती हैं ।

* * *

महारोग एड्स से बचाव

डा. प्रेमचंद्र स्वर्णकार
सहायक शल्य चिकित्सक, शासकीय चिकित्सालय
हटा, दमोह (म.प्र)

एड्स (एक्वायर्ड इम्यून डेफिशिएन्सी सिन्ड्रोम) एक ऐसा रोग है जो एक बार हो जाए, तो रोगी की जान लेकर ही जाता है, क्योंकि इसकी अब तक कोई सफल चिकित्सा प्रणाली नहीं है। इसके रोगी के शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर या समाप्त हो जाने के कारण छोटे-से-छोटा रोग भी रोगी की जान ले सकता है। इस रोग की चर्चा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर होते रहने के बावजूद भी इसका संक्रमण हमारे देश में दिनोदिन बढ़ रहा है। एक चिकित्सक की लेखनी से निकले इस रोग से बचने के उपायों को हम इस आशा-आकांक्षा से प्रकाशित कर रहे हैं कि कदाचित इस रोग के संक्रमण को कम करने में यह सहायक हो सकेगा।

सौभाग्य से भारत में अभी एड्स की शुरूआत ही है। यह बड़े पैमाने पर नहीं फैला है, इसलिए नियंत्रण और बचाव संभव है। थाड़ीसी सावधानियों से इस महारोग से बचा जा सकता है। कठिनाई तो अमेरिका जैसे देशों में है, जहाँ कई हजार इसके रोगी हैं, और उनमें से लगमग 65% रोगी ऐसे हैं, जिनको वर्तमान में कोई तकलीफ नहीं है। इस तरह के रोगी सरलता से रोग फैलाने में सक्षम होते हैं। अधिक संख्या होने की वजह से उन्हें स्वस्थ व्यक्तियों से अलग-थलग भी नहीं रखा जा सकता, इसलिए वहां यह समस्या अधिक जटिल है, लेकिन यह सोचकर भारत वासियों को निश्चिंत भी नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि इस रोग का अभी तक इलाज नहीं खोजा सका है। एक बार रोग हो जाने पर उससे छुटकारा मुश्किल है, इसलिए पूरे प्रयत्न से उससे बचाव पर ध्यान देना होगा। बचाव के लिए रोग की सम्यक् जानकारी भी आवश्यक है।

जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के सम्पर्क से रोग हो सकता है, उनसे दूर रहा जाय। ऐसे प्रतिरोधात्मक उपाय किये जायें कि एड्स का विषाणु स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में प्रवेश न कर सके। एड्स के कुछ विशेष व्यक्तियों अथवा समूहों में होने की अधिक संभावनाएँ होती हैं। इनको "हाइरिस्क ग्रुप" कहते हैं, इसलिए ऐसे समूह के लोगों को विशेष सावधानी की जरूरत है, और इन समूहों के लोगों से आम लोगों के भी बचने की आवश्यकता है। यदि कुछ प्रमुख बातों का ध्यान रखा जाये तो रोग से सुरक्षित रहा जा सकता है।

"हाईरिस्क ग्रुप", अथवा जिन समूहों के व्यक्तियों को रोग का खतरा उत्पन्न हो सकता है, वे निम्नलिखित हैं :

1. **आचार विहीन यौन संबंध वाले लोग** - इनमें इस महारोग के होने की संभावनाएं अत्यंत प्रबल होती हैं, प्रमुख तौर पर समलैंगिक संबंध रखने वाले रोग का ज्यादा शिकार बनते पाये गये हैं, इसलिए रोग से बचाव के लिए यह आवश्यक है कि ऐसा आचरण करने वाले व्यक्ति अपनी ये गंदी आदतें छोड़ दें। इसके अलावा, सामान्य लोग भी ऐसे यौन संबंध स्थापित न करें। वेश्याओं को भी एड्स रोग होने की ज्यादा संभावनाएँ होती हैं। वेश्याओं के अलावा, कई-कई स्त्रियों से संबंध रखने वाले पुरूष अथवा कई-कई पुरूषों से संबंध रखने वाली स्त्रियां भी इसकी शिकार हो सकती हैं, इसलिए इस तरह के यौनाचार पर भी अंकुश लगाना अत्यंत आवश्यक है। 'काल गर्ल्स' एवं वेश्याओं के संपर्क से बचना चाहिए। किसी अनजान व्यक्ति से यौन संपर्क स्थापित न किया जाये। वैसे, एक सीमा तक कण्डोम का उपयोग सुरक्षा प्रदान करता है, लेकिन इसे पूर्णतः सुरक्षित नहीं माना जा सकता है। विदेशों में एड्स बीमारी फैलने के पश्चात, कण्डोम (निरोध इत्यादि) की विक्री अप्रत्याशित रूप से बढ़ गई है, यहां तक कि कण्डोम बनानेवाली भारतीय कम्पनियों को भी विदेशों से क्रय के आदेश मिले हैं। वहाँ वर्जना हीन मैथुन पर रोक लग पाना

कुछ मुश्किल कार्य है । फिर भी, लोगों ने वेश्याओं के पास जाना कम कर दिया है । (यह एक रोचक तथ्य है कि वहां ग्राहकों को फँसाने के लिए अब कुछ वेश्याएँ स्कूली छात्राओं की वेशभूषा में घूमती हैं । स्कूलों की छुट्टी होने पर ये ग्राहकों को फँसाती हैं, और यह प्रकट करती है कि ये वेश्याएं नहीं बल्कि स्कूल में पढ़ने वाली छात्राएं हैं ।)

2. **नशीली दवाइयों का सेवन करने वाले लोग** - जो नशैलची नस में इंजेक्शन लगाकर नशीले पदार्थ लेते हैं, उनमें भी यह रोग होने की संभावना होती है । यदि ऐसे व्यक्तियों में एक भी एड्स रोगी हुआ तो वह पूरे समूह को रोगी बना सकता है । दूषित सुई द्वारा एड्स के विषाणु स्वस्थ व्यक्ति के भी खून में प्रवेश कर जाते हैं, अत: इनको विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है । बेहतर हो कि वे इस तरह के खरतनाक नशे छोड़ दें । यदि छोड़ना संभव न हो तो सुई और पिचकारी को कीटाणु रहित करने का ध्यान रखें । स्वस्थ व्यक्तियों को भी इनसे (तथा नशा करने वालों से) बचने की आवश्यकता है ।

यह कितने दुख की बात है कि नशे के आदी माता-पिता के नवजात, अबोध बच्चों में भी यह रोग चला जाता है, जबकि उन बेचारों का इसमें कोई दोष नही होता ।

अपने देश में इस तरह से रोग फैलने की ज्यादा संभावनाएं नहीं हैं, लेकिन महानगरों में नशा करनेवालों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है । यहां रहकर पढ़ने वाले विदेशी छात्रों में भी इसका चलन है । कई विदेशी पर्यटक भी नशे के आदी होते हैं । पर्यटन स्थलों पर सामान्य व्यक्ति को भी एड्स से बचाव के तरीकों पर विशेष ध्यान देना होगा ।

3. **रक्त ग्रहण करनेवाले लोग** - रक्त के माध्यम से रोग के विषाणु सीधे एक व्यक्ति के रक्त से दूसरे में पहुंच जाते हैं, इसलिए रक्त ग्रहण कर्ताओं को भी अब विशेष सावधानी की आवश्यकता है । यद्यपि देश में किसी एड्स पीड़ित व्यक्ति का रक्त अन्य व्यक्ति को दे देने की घटना नहीं हुई है, लेकिन ऐसे कई रोगी पाये गये हैं जिनको शल्य चिकित्सा के दौरान अथवा अन्य किन्हीं रोगों के लिए विदेश में रक्त दिया गया और चंद बर्षो बाद वे इस रोग के शिकार बन गये । रक्त लेने अथवा देने के समय भी अत्यन्त सावधानी की जरुरत है । बचाव का सबसे अच्छा तरीका यह है कि रोगी को जाने पहिचाने सम्बधियों का ही रक्त दिया जाए । यदि यह संभव न हो और व्यावसायिक रक्त दाता का रक्त लेना पड़े, तो ऐसे रक्तदाता का ले जिसके पास एड्स रोग से मुक्त होने का प्रमाण पत्र हो । विदेशों से आये फैक्टर - 8 एवं 9 के साथ भी एड्स रहित होने का प्रमाण पत्र होना चाहिए । वैसे, इस मामले में रक्त बैंक और सरकार कई सावधानियां बरत रही हैं । सुइयों इत्यादि का विशेष रूप से कीटाणु रहित होना भी आवश्यक है ।

हीमोफीलिया के रोगियों को विशेष सावधानियों की आवश्यकता है, क्योंकि उन्हें बार-बार फैक्टर - 8 और 9 देना पड़ता है । फैक्टर - 8 और 9 कई दाताओं के रक्त से निकाला जाता है । इसका एड्स विषाणु से रहित होना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा ग्रहण कर्ता को निश्चित रूप से एड्स हो सकता है, इसलिए रोग से बचने के लिए रक्तदाताओं को रक्त देने के पूर्व एड्स के लिए परीक्षण करवाना चाहिए । ''हाईरिस्क ग्रुप'' के व्यक्तियों का रक्त दान में नहीं लेना चाहिए ।

ऐसे माता-पिता जिनके रक्त में एड्स के विषाणु हैं, उन्हें संतति निरोध के साधन अपनाना जरूरी है, क्योंकि यदि उनके बच्चे हुए, तो वे भी इस भयंकर रोग को जन्म से ही लिये पैदा होंगे, इसलिए इससे बेहतर तो उनका पैदा न होना है ।

एक विवादस्पद प्रश्न यह भी है कि एड्स के रोगी से किस सीमा तक अलग रहा जाये ? यह बात सही है कि रोगी को छूने से या उसके कपड़े पहिनने से एड्स नहीं हो सकता, लेकिन कुछ मामलों में एड्स पीड़ित व्यक्ति से बचना आवश्यक है । इनमें ऐसे रोगी भी शामिल हैं, जिनके रक्त में तो एड्स विषाणु होते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से कोई लक्षण उत्पन्न न होने के कारण ये बाहरी तौर पर स्वस्थ दिखते हैं, ऐसे व्यक्तियों से यौन सम्पर्क तो कतई नहीं करना चाहिए । इसके अलावा, उनके उपयोग के ब्लेड, टूथ ब्रश इत्यादि भी इस्तेमाल न करें, क्योंकि इनमें

यदि विषाणु उपस्थित हुए, तो वे त्वचा छिलने से रक्त में भी जा सकते हैं। एड्स रोगी का सामाजिक बहिष्कार आवश्यक नहीं है, लेकिन उपरोक्त मामलों में उनसे सावधनियां बरतना आवश्यक है। इस सबके अलावा, देश के विभिन्न अत्पतालों, उनमें कार्यरत चिकित्सकों और कर्मचारियों की भी एक प्रमुख भूमिका है। यदि एड्स के रोगी की जांच और इलाज करनेवाले चिकित्सक और देख-रेख करनेवाली नर्सें एवं अन्य कर्मचारीगण पर्याप्त सावधानियां न बरतें, तो उन्हें भी यह रोग लगने की संभावना हो सकती है, और अस्पतालों में पिचकारी, सुईयों एवं जांच के अन्य उपकरण यदि पूर्णतः जीवाणु रहित (स्टरिलाइलज्ड) न किये जायें, तो रोग अन्य मरीजों में फैल सकता है, इसलिए रोग से बचाव के लिए उचित तरीके से जीवाणु रहित प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है। एक रोगी को लगायी गयी सुई, अन्य रोगी को बिना उसे जीवाणु रहित बनाये, नहीं लगाई जानी चाहिए। संक्रमण को रोकने के लिए आजकल फेंकी जाने योग्य सुइयों और पिचकारियों का प्रचलन बढ़ रहा है, लेकिन भारत में यह प्रत्येक जगह संभव नहीं है, क्योंकि मरीजों की संख्या को देखते हुए यह प्रयोग अत्यंत मंहगा पड़ता है, इसलिए निर्जीवीकरण और साफ-सफाई की ओर ही ध्यान देना होगा। वैसे, जहां संभव हो, वहां इसका प्रयोग किया जा सकता है।

एड्स - रोगी के रक्त की जांच करनेवाले चिकित्सकों एवं रक्त निकालने वाले कर्मचारियों को रबर के दस्ताने और गाऊन पहिनना चाहिए। यह ध्यान रखने की बात है कि शरीर का कोई ऐसा भाग खुला न हो, जो कार्य करते समय कटा या छिला हो, क्योंकि ऐसी जगह से विषाणु सीधे रक्त में प्रवेश कर सकते हैं। एड्स रोगी के इलाज के दौरान सम्पर्क में आये उपकरणों इत्यादि को उचित तरीके से विषाणु रहित बनाया जाना चाहिए। जहां तक संभव हो, ऐसे मरीजों के लिए फेंकने वाली पिचकारी और सुइयों का प्रयोग हो, तो अच्छा है।

वास्तव में, इस रोग से बचना कठिन नहीं हैं, हां, आज की तारीख तक एड्स हो जाने के बाद उसका इलाज कठिन ही नहीं असंभव है, इसलिए रोग के बचाव की ओर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। दुनिया के चोटी के वैज्ञानिक इसका टीका बनाने प्रयास में लगे हैं। यह संभावना व्यक्त की जा रही है कि अगले कुछ वर्षों में इस रोग का टीका शायद बन जाये। टीका बनाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, एड्स विषाणु का बार-बार अपना रूप बदल लेना। जब तक टीका नहीं बना है, तब तक बचाव के उपरोक्त तरीकों पर ही अपना ध्यान केंद्रित रखना होगा। यह भी आवश्यक है कि इसके बारे में लोग शिक्षित हों। उन्हें भ्रांतियों से रहित सही और पर्याप्त जानकारी मिले, ताकि वे कैंसर से भी अधिक खतरनाक रोग से स्वयं तो बचें ही, अन्य लोगों को भी सुरक्षित रखने में सक्षम हों। तभी रोग को फैलने से रोका जा सकता है।

एक बात और ध्यान में रखने की है कि विषाणु से संक्रमित सभी रोगियों में एड्स के लक्षण विकसित नहीं होते हैं। मोटे तौर पर, केवल 10% रोगियों में ही यह रोग पूर्णतः विकसित होता है। लगभग 25% रोगियों में इसके हलके लक्षण उत्पन्न होते हैं, अर्थात रोग खरतनाक अवस्था में नहीं पहुंच पाता, और शेष 50% में विषाणु होते हुए भी, कोई लक्षण नहीं मिलते हैं। ऐसे लक्षण विहीन एड्स रोगी यह रोग फैलाने में ज्यादा खरतनाक साबित होते हैं, इसलिए इनसे बचना अत्यंत आवश्यक है।

नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना भी रोग पर अंकुश लगाने में काफी सहायक हो सकती है। वैसे, भारत में उन्मुक्त एवं अप्राकृतिक यौनाचार उतनी मात्रा में नहीं है, जितना कि विदेशों में है, लेकिन महानगरों में यह बढ़ता जा रहा है, इसलिए इस पर रोक लगाना आवश्यक है। एड्स की रोकधाम के लिए यौन संबंधों में नैतिकता को ध्यान में रखना होगा, तभी रोग पर पूरी तरह नियंत्रण हो पाएगा।

संक्षेप में, किसी व्यक्ति को रोग से बचने के लिए निम्न सावधानियां बरतनी चाहिए :-

१. अमर्यादित - अप्राकृतिक अथवा एक साथ कई साथियों के साथ यौन संबंध न रखें।

२. अनजान व्यक्ति या उपरोक्त वर्णित एड्स संक्रमण के लिए संभावित व्यक्ति से यौन सम्पर्क न रखें।

(शेष पृष्ठ - 47 पर)

लू लगने के कारण और निवारण

वीरेन्द्र शर्मा
882/29, कमल कालोनी,
रोहतक - 124 001.

गर्मी के दिनों में खाली पेट, चिलचिलाती धूप में निकलने पर कभी-कभी लू लग जाती है जिससे हमारे शरीर की ताप-स्थापी प्रणाली बिगड़ जाती है और मृत्यु भी हो सकती है। हमारे शरीर की यह प्रणाली और उसमें लू लगने पर होने वाली क्षति की जानकारी प्रस्तुत है।

प्राणियों के विकास क्रम में मनुष्य ही (स्तन पाई, रीढ़दार) एक ऐसा प्राणी है जिसके पास एक अति जटिल लेकिन बेहतरीन तापनियमन प्रणाली है जिसके द्वारा वह मौसम की मार का सामना करता है, इसलिए मनुष्य को एक नियत-तापी जीव कहा जाता है।

विकास के निचले पायेदान पर खड़े सरीसृप, सांप-सपोले (रेंगनेवाले जीव), मेंढक, टोड, जैसे जल-स्थलचर तथा अन्यान्य जलचरों में यह ताप नियमन प्रणाली अपनी आदिम अवस्था में ही रह गयी। शीतनिद्रा के दौरान ध्रुवीय रीछ, भालू आदि प्राणियों का शरीर ठंडा हो जाता है, परन्तु इस दौर से निकलने पर ये प्राणी भी मानव की तरह ताप-नियमन कर लेते हैं।

पक्षियों व ज्यादातर पशुओं में त्वचा के ठीक ऊपर या तो लोमचर्म चढ़ा होता है, या फिर पंख। बाहर की ठंड से बचने के लिए पक्षी अपने पंख फुला लेते हैं। पंखों में भरी ताप-रोधी-हवा, त्वचा से उड़नेवाली ऊष्मा को रोक लेती है, बाहर की ठंड भी अंदर नहीं आ पाती। कुछ पशु बाहर की ठंड से बचने के लिए कुंडली मार लेते हैं। सतह का क्षेत्रफल कम हो जाने से उनके शरीर से उड़ने वाली ऊष्मा कम हो जाती है।

गर्मी लगने पर कुत्ते तेजी से हांफते हैं, परिणामतः श्वसन क्षेत्र व मुख से पानी तेजी से वाष्प बनकर उड़ने लगता है। वाष्पन से शरीर में ठंडक पैदा होती है। परिवेश के अनुकूल, जलवायु के अनुकूल ताप नियमन करके स्वयं को ढाल लेने की बला की क्षमता होती है पक्षियों व ज्यादातर पशुओं में। मनुष्यों के अपेक्षतया पतले बाल, लोम-चर्म की भांति ताप-संरक्षण की भूमिका अदा नहीं कर सकते हैं।

मनुष्य शरीर के तमाम अंग जिस बाहरी आवरण में लिपटे रहते हैं, उसे त्वचा कहा जाता है। त्वचा का अपना तापमान परिवेशीय तापमान के साथ तो बदलता रहता है, परन्तु इसमें लिपटे तमाम अंगों यानी 'क्रोड' का तापमान 97-99^0 फा. या फिर 36.1 - 37.22^0 से. ही बना रहता है। यह बात अलग है कि कठोर परिश्रम, मेहनत-मजूरी या फिर हाड़ तोड़ व्यायाम, खासकर पेशीय कसरत के बाद क्रोड का तापमान 1-2^0 फा. तक बढ़ जाता है, जबकि ठंडे मौसम में नंगा उघड़ा हो जाने पर क्रोड का तापमान 1-2^0 फा. गिर जाता है।

त्वचा व त्वचा से ढके ऊतकों और विशेषकर चर्बी का काम बाहरी ठंड व भीषण गर्मी से क्रोड की रक्षा करना होता है। हमारी त्वचा एक ताप-रोधी ऐसा आवरण है जो 'शरीर प्रतिरक्षा व्यवस्था' का एक सक्रिय एवं गत्यात्मक अंग है। त्वचा के नीचे जो रक्त-वाहिकाओं का गहन संजाल फैला हुआ है, मौसम का परिवर्तन उसके अन्दर प्रवाहित रक्त में शून्य से लेकर 30% तक की घटबढ़ कर सकता है, यानि उस रक्त में जो हृदय रूपी पम्प प्रति मिनट शरीर में संचार करता है, मौसम के अनुरूप घटबढ़ होती रहती है।

बाहरी गर्मी के प्रभाव से जैसे ही क्रोड का

तापमान बढ़ता है, त्वचा की ओर पहुँचने वाले रक्त की मात्रा बढ़ जाती है, फलस्वरूप क्रोड से त्वचा की ओर ऊष्मा का प्रवाह बढ़ जाता है। ऊष्मा का वाहक रक्त होता है। त्वचा के द्वारा अतिरिक्त ऊष्मा वातावरण में उड़ने लगती है। समझा जाता है कि भीषण गर्मी व कड़ाके की ठंड के बीच ऊष्मा का वह अन्तरण जो क्रोड से रक्त के द्वारा त्वचा की ओर होता है, आठ गुना तक बढ़ जाता है।

रक्त की मात्रा में घटबढ़ करके हर पल हमारी सक्रिय त्वचा ही ऊष्मा के अन्तरण का नियमन करती है। वास्तव में, हमारे मस्तिष्क के मूल में स्थित अधश्चेतक (हाइपोथैलेमस) शरीर के ताप नियमन का मुख्य केन्द्र है, जहां से आदेश मिलते ही तंत्रिका कोशाणु त्वचा की रक्त-वाहिकाओं को सिकुड़ने या फैलने के लिए प्रेरित करते हैं, ताकि शरीर की तात्कालिक आवश्यकता के अनुरूप त्वचा की ओर रक्त की आवाजाही हो सके।

आधारभूत चयापचय उन तमाम रासायनिक अभिक्रियाओं को मोटे तौर पर कह दिया जाता है जिनसे ऊष्मा मुक्त होती है। शरीर के कुशल संचालन के लिए इन तमाम रासायनिक अभिक्रियाओं से उत्पन्न ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है। ठंड के समय होने वाली कंपकंपी के फलस्वरूप भी शरीर में गर्मी पैदा होती है।

विकिरण के द्वारा हमारे शरीर से जो ऊष्मा उड़ जाती है, उसकी मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे आसपास का तापमान शरीर से कम है या ज्यादा। सामान्य तापमान पर शरीर से उड़कर ऊष्मा परिवेश में विलीन होती रहती है। ऊष्मा का विकिरण वह प्रत्येक पिंड करता है, जिसका तापमान शून्य डिग्री केल्विन से ऊपर होता है। वाष्पन के द्वारा हमारी त्वचा से तथा श्वास के द्वारा फेफड़ों से भी ऊष्मा बाहर जाती है। मनुष्य शरीर से प्रतिदिन लगभग 600 मिलीलीटर पानी त्वचा व श्वास के द्वारा वाष्प बन जाता है। प्रति घंटे 12-16 केलारी ऊष्मा की निकासी इसी वाष्पन के द्वारा होती रहती है।

परिवेश के बहुत अधिक गर्माने पर शरीर से ऊष्मा की कारगर निकासी में केवल पसीना ही हमारी मदद करता है। विकिरण के द्वारा ऊष्मा निकासी रुक जाती है।

हमारी त्वचा में बाल-सी महीन केशिकाओं का जाल बुना हुआ है। स्वेद ग्रन्थियों से होने वाला स्राव इन्हीं के द्वारा सतह पर पहुँच कर वाष्पित होता है।

स्वेद ग्रन्थियों के नीचे, गहरे ग्रन्थिल भाग से प्राथमिक द्रव के रूप में जल व सोडियम क्लोराइड निकलता है जिसमें सोडियम व क्लोरीन आयनों का क्रमशः 142 व 104 बहुतुल्य प्रति लीटर मौजूद होता है। स्वेद ग्रन्थि के सतही नलिकामय भाग से गुज़रने पर सोडियम क्लोराइड न्यूनाधिक अवशोषित हो जाता है, तथा सोडियम व क्लोरीन आयन का स्तर घटकर 5 बहुतुल्य प्रति लीटर पर आ जाता है, यदि पसीना धीरे-धीरे आ रहा हो। पसीना बहने की दर के अधिक होने पर 'सोडियम' व 'क्लोरीन' आयन का ह्रास बढ़कर 60 बहुतुल्य प्रति लीटर तक पहुंच जाता है। उन लोगों को इस स्थिति का विशेषरूप से सामना करता पड़ता है, जो गर्म क्षेत्रों में रहने के अभ्यस्त नहीं हैं। ऐसे लोगों को एहतियाती तौर पर 8-10 दिनों तक प्रतिदिन 20-25 ग्राम नमक का सेवन करना चाहिए। तभी गर्म जलवायु के प्रति ये एक ताप-रोधी क्षमता विकसित कर पाते हैं।

तापीय अनुकूलन में 1-6 सप्ताह तक का समय लग सकता है। क्षेत्रीय लोगों का तापानुकूलन होने पर पसीने में सोडियम क्लोराइड का स्तर स्वतः ही गिर जाता है। इतना ही नहीं, गर्म मौसम में बहने वाले पसीने की मात्रा बढ़कर प्रतिघंटा 1.5 - 2 लीटर तक हो जाती है, जबकि जून के महीने में शिलांगवासी अचानक दिल्ली आने पर कठिनाई से 700 मि.ली. प्रति घंटे के हिसाब से ही पसीने का स्राव कर पाता है। अभ्यस्त होने पर हल्का नमक युक्त पसीना ठंडक का अनुभव कराता है। पसीने के वाष्पीकृत होने पर तेजी से ऊष्मा की निकासी होती है, जबकि नमक

की निकासी घटकर 3-5 ग्राम प्रतिदिन पर आ जाती है, जो आरंभ में 19-30 ग्राम प्रतिदिन तक हो सकती है। स्वेद ग्रन्थियां प्रकृति प्रदत्त वातानुकूलन संयंत्र का कार्य करती हैं।

मनुष्यका तापस्थापी तंत्र (थर्मोस्टैट) संवेदकों, समन्वय केन्द्र तथा प्रभावांगों से लैस होता है। संवेदक उन ताप टोही अभिग्राहकों को कहा जाता है जो त्वचा में, त्वचा के नीचे गहरे ऊतकों में, तथा स्वयं ताप-नियमन केन्द्र, अधश्चेतक में विद्यमान होते हैं। सतह व क्रोड के तात्कालिक तापमान की सूचना यही अभिग्राहक मस्तिष्क को देते हैं। रोगाणु या विषाणु जन्य संक्रमण होने पर, ज्वरग्रस्त होने पर यह सारा तापनियमन-तंत्र गड़बड़ा जाता है। 'लू' लगने पर यह चरमरा कर ढह भी सकता है, टूट भी सकता है। संकट के समय अधश्चेतक अनुकम्पी तंत्रिकाओं द्वारा हमारी त्वचा, रक्तवाहिकाओं व स्वेद ग्रन्थियों को तथा पेशियों को द्रुतगति से आपातकालीन संदेश भेजता है। हार्मोन रूपी रासायनिक राजदूत भी यह आपात्कालीन टेलेक्स संदेश प्रभावांगों तक पहुंचाते हैं।

जैसे ही शरीर में ऊष्मा का उत्पादन एक क्रान्तिक उत्पादन से ज्यादा हो जाता है, क्रोड का तापमान बढ़ जाता है। संवेदक इस अतिरिक्त ताप वृद्धि की सूचना अधश्चेतक तक पहुँचाते हैं और उसके आदेश पर तुरन्त त्वचा-रक्तवाहिकाएं फैल जाती हैं और स्वेद ग्रन्थियों से स्राव होने लगता है।

'क्रोड' के एकाएक ठंडा हो जाने या बहुत ज्यादा गर्मा जाने की तापानुभूति भी अधश्चेतक कराता है, फलस्वरूप व्यक्ति फौरन मौसम के अनुरूप अपना बचाव करता है। मनुष्य की गर्मी व सर्दी सहन करने की क्षमता, हवा की नमी पर भी निर्भर करती है।

सूखी गर्म हवा के थपेड़े व्यक्ति सहन कर सकता है यदि वह मेहनत न कर रहा हो, फिर चाहे तापमान थर्मामीटर को ही क्यों न तोड़ने को आतुर हो।

विश्राम की स्थिति में 150 फा. के तापमान से भी जूझा जा सकता है यदि हवा एकदम से सूखी हो और ठीक से चल रही हो। दूसरी ओर, बरसात के चिपचिपे, उमस भरे वातावरण में 94^0 फा. का तापमान भी असह्य हो जाता है। बरसात के दौरान हवा अधिकतम जलवाष्प को लिये रहती है। ऐसे में यदि व्यक्ति हाड़तोड़ श्रम करने पर विवश हो, तब माहौल के $85\text{-}90^0$ फा. तक गर्माने पर भी 'क्रोड' का तापमान बढ़ने लगता है।

गर्म लू के थपेड़े ताप - नियमन तंत्र की रीढ़ ही तोड़ देते हैं। स्वेद ग्रन्थियाँ लू लग जाने पर काम करना बन्द कर देती हैं। इसका मतलब है, शरीर को ठंडा करने वाली एक प्रणाली का ठप्प हो जाना। शुरु में तो यह ताप-नियमन तन्त्र थोड़ा बहुत काम करता है, परन्तु परिवेशी तापमान के एकाएक बढ़ जाने पर यह तंत्र गड़बड़ा जाता है, यहां तक कि शरीर की कोशिकाओं के रासायनिक घटक सीधे-सीधे नष्ट होने लगते हैं। सबसे पहले गर्मी के हमले का निशाना मस्तिष्क की कोशिकाएं बनती हैं। धीरे-धीरे मनुष्य के गुर्दे तथा रक्त-वाहिकाओं की कोशिकाएं भी नष्ट होने लगती हैं।

स्वेद ग्रन्थियों के विकारग्रस्त होने पर, या तंत्रिका कोशाणुओं के ठीक से काम न कर पाने की स्थिति में सूखे गर्म मौसम में भी पेशीय कठिन व्यायाम करने से यही स्थिति पैदा हो सकती है।

मधुमेह व मनोरोगों से ग्रस्त व्यक्तियों, वृद्धों व उन लोगों में, जो निर्जलीकरण के शिकार हो जाते हैं, लू लगने का खतरा और भी बढ़ जाता है। लू लगने पर शरीर का तापमान बहुधा 105^0 फा. (या 40.6^0 से.) से ऊपर चला जाता है। जिससे स्वेद ग्रन्थियां निष्क्रिय हो जाती हैं।

सिरदर्द, गति-शून्यता, झुनझुनाहट व जलन के साथ रोगी नीम-बेहोशी से बेहोशी की स्थिति में चला जाता है। नब्ज व श्वास की गति बढ़ने के साथ ही आमतौर पर रक्त चाप भी बढ़ जाता है।

रोग की अन्तिम स्थिति में दिल भी प्रभावित होता है। कारगर तुरन्ती इलाज ही उसे बचा सकता है।

लू ग्रस्त व्यक्ति का तमतमाया (लाल) सूखा, गर्म चेहरा साफ़ दिखलाई देता है। त्वचा गर्म होकर सूखने लगती है और शरीर से गर्मी उड़ना बन्द हो जाती है। पेशियां खिंच जाती हैं। इस स्थिति में रोगी को नंगा करके ठंडे पानी के टब में बिठा देना चाहिए। लिटाने की स्थिति में सिर थोड़ा ऊपर रखना चाहिए। टब न होने पर रोगी के सारे शरीर पर कुनकुने पानी की गीली पट्टियां रखनी चाहिए। पानी तेजी से वाष्प बनकर उड़ना चाहिए। पंखा करना चाहिए। हर दस मिनिट के बाद रोगी का तापमान देखना चाहिए। तापमान 101^0 फा. या 38.5^0 से. से नीचे नहीं लाना चाहिए। तापमान के 103^0 फा. तक गिर जाने पर रोगी को टब से निकाल लेना चाहिए। त्वचा पर मालिश करना चाहिए, अन्यथा रोगी एकदम उच्च तापमान से निम्न ताप की स्थिति में चला जाता है। इलाज के कई दिनों बाद तक, रोगी के तरल पदार्थों, सोडियम, पोटेशियम आदि के अनुपात का ध्यान रखना पड़ता है। यह भी देखना जरूरी होता है कि गुर्दे ठीक से काम कर रहे हैं या नहीं। पेशीय ऐंठन व आघात से बचाने के लिए रोगी को उपशामक दवाएं भी देनी पड़ सकती हैं। लवणीय जल के निषेचन के अतिरिक्त एलकोहल जैसा कोई भी उत्तेजनकारी पदार्थ त्वचा पर नहीं मलना चाहिए। तुरन्ती प्राथमिक चिकित्सा रोगी को गंभीर जटिलताओं से बचा सकती है। जहां तक हो सके, लू लगने से बचिए। तेज धूप में काम करने वाले मजदूर को प्रति घंटा एक लीटर के हिसाब से तथा फेरी वाले को प्रति घंटा आधा लीटर पानी अवश्य पीना चाहिए। तेज धूप में काम करते हुए जैसे ही भारहीनता व गतिशून्यता का अनुभव हो, सिर में दर्द की शिकायत हो, तब फ़ौरन काम छोड़कर ठंडी जगह पर आराम कीजिए।

गर्म मौसम में व्यायाम करने के बाद स्वस्थ व्यक्ति भी पेशीय जकड़न, पेशियों के अप्रत्याशित संकुचन की चपेट में आ सकता है। तापीय-संलक्षणों में इस स्थिति को अपेक्षतया निरापद समझा जाता है। ऐसे व्यक्ति को ठंडे स्थान पर ले जाकर 5-30 मिनिट के अन्तर पर एक गिलास पानी में चौथाई चाय का चम्मच, नमक (लगभग एक ग्राम) तब तक देते रहना चाहिए, जब तक वह पेशीय संकुचन की पीड़ा से छुटकारा न पा जाए।

कभी-कभी तेज धूप में शान्त खड़ा व्यक्ति अचानक गिरकर बेहोश हो जाता है। इस स्थिति में तापमान सामान्य बना रहता है। मस्तिष्क को रक्त की आपूर्ति निलम्बित हो जाती है। रक्त प्रवाह क्रोड के निचले हिस्से में अधिक होने लगता है। छाया में लिटाने से ऐसे व्यक्ति की चेतना लौट आती है।

एक ही व्यक्ति में एक साथ एक से ज्यादा ताप संलक्षण भी देखे जा सकते हैं। इलाज से बेहतर ताप-संलक्षणों की रोकथाम है, तेज धूप से बचिए।

* * *

''वैज्ञानिक'' के एजेन्टों से निवेदन

''वैज्ञानिक'' अध्ययन हेतु पत्रिका है; इसमें केवल पढ़ने के लिए सामग्री नहीं के बराबर होती है। अत:, एजेन्टों से निवेदन है कि अपनी आवश्यकतानुसार ही इसकी प्रतियां मंगाएं। ''वैज्ञानिक'' की सामग्री कभी पुरानी नहीं होती है। अत:, बिकी हुई प्रतियों को वापस लेने की कोई व्यवस्था नहीं है।

- संपादक

कवकों की आर्थिकी

विजय उमराव
बी-31, भगतसिंह छात्रावास,
चंद्रशेखर आज़ाद कृषि एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कानपुर - 208 002.

कवक, कफूंद या फंजाई धागे सदृश्य पौधे-जगत की रचनाएं हैं जो अन्य जीवित या मृत जैविक रचनाओं पर उगती हैं, और उन्हीं के पदार्थों को विघटित करके अपना भोज्य बनाती हैं। इनसे एक ओर जहां कई प्रकार से हानियां होती हैं, वहीं दूसरी ओर, कई बहु-आयामी लाभ भी हैं। चिर-परिचित 'एंटीबायोटिक्स' इसी कुल की रचनाओं की देन हैं। आर्थिक पहलू से इनके लाभ व हानि पर विचार प्रस्तुत हैं।

जून, जुलाई के महीनों में, बरसात के दिनों में बाग-बगीचों, पेड़-पौधों, लकड़ियों के ढेरों, गीली रोटी, मुरब्बा, अचार, चमड़े आदि पर सफेद रंग लिये हुए धागे सदृश्य तमाम रचनाएं दिखायी देती हैं। छत्रक का रूप धारण किये हुए ये धागे-सी रचनाएं (सफेद-भूरे) आखिर हैं क्या ? यही हैं कवक, जिनका हमारे और पेड़-पौधों के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। ये कवक (फंजाई), पर्णहरिम रहित, जड़, तना और पत्ती विहीन (थेलोफाइट), परजीवी व मृतोपजीवी एवं बहुकोशीय धागे सदृश्य सर्वव्यापी पौधे हैं। पर्णहरिम का अभाव होने के कारण ये पौधे होते हुए भी, अपना भोजन स्वयं नहीं बना पाते और चमड़े, खाद्य, अचार, रोटी, फल, मुरब्बा आदि पर मृतोपजीवी के रूप में पाये जाते हैं। कुछ कवक परजीवी भी होते हैं जो अपने परपोषी पर रोग उत्पन्न कर देते हैं। यह सरलतम रचनाएं जल और वायु में भी पायी जाती हैं। इन कवकों का अध्ययन बनस्पति विज्ञान की एक अलग शाखा 'माइकोलॉजी' के अन्तर्गत किया जाता है।

जीवधारियों व वनस्पतियों के लिए कवक हानिकारक एवं लाभदायक, दोनों होते हैं। इसके द्वारा पौंधो में उत्पन्न बीमारियों का अध्ययन करने वाले विज्ञान को "प्लान्ट पैथोलॉजी" कहते हैं।

ऐसे कवक जो पूरा का पूरा भोजन अपने परपोषी (होस्ट) से ही प्राप्त करते हैं, परपोषी की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। ऐसे कवकों को 'पूर्ण परजीवी' कहते हैं। किन्तु, कुछ कवक ऐसे भी होते है जो परपोषी की मृत्यु के पश्चात, उस शरीर से अपना भोजन प्राप्त कर के जीवित रहते हैं। ऐसे कवकों को 'विकल्पी मृतोपजीवी' के नाम से जाना जाता है।

इनकी शारीरिक रचना पतले धागे के समान (हाइफी) होती है। इन कवक सूत्रों के जाल को कवक-जाल (माइसीलियम) कहते हैं। कुछ ऐसे भी कवक होते हैं जिनमें कवक जाल नहीं पाया जाता, जैसे - सिनका इट्रियम।

मृतोपजीवी कवक, जैसे राइजोपस, म्यूकर, एसपरजिलस आदि सदैव मृत कार्बनिक पदार्थों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। परजीवी कवक जीवित पौधों व जानवरों के शरीरों पर उग आते हैं और कवक सूत्रों द्वारा अपना भोजन चूसते रहते हैं। परजीवी कवक, जैसे पकसीनिया, आस्टिलोगो, एलब्यूगो आदि, पौधों से भोजन लेकर उनमें अनेक प्रकार की बीमारियां पैदा कर देते हैं, जैसे रस्ट, स्मट आदि।

आर्थिकी : हमारे जीवन का कवकों से बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। इनकी अनेक प्रजातियां हमारे लिए बहुत आर्थिक महत्त्व की हैं। किन्तु इनके द्वारा लाभों के साथसाथ अनेक हानियां भी हैं। पौधों के अनेक रोग इन्हीं कवकों द्वारा ही लगते हैं।

लाभदायक गुण : कुछ कवकों, जैसे छत्रक (अगेरिकस), गुच्छी (मारचेला) लाइकोपरडान, मशरुम (कुकुरमुत्ता) आदि की खेती देश के कई हिस्सों में की जाती है। जापान और चीन में लेंटिनस इण्डोडस एवं आमीलेरिया में टिसू टेक, भारत में बालबेरिया स्पेसीज तथा अमेरिका व यूरोप में अमेरिकस बाईस पोरस नामक छत्रक कवक खाद्य के लिए उगाये जाते हैं, जो गाजर की भांति ही पौष्टिक तत्व प्रदान करते हैं। इन्हें कारखानों के उपजात, सिरका, लकड़ी का बुरादा, पुवाल आदि में उगाया जा सकता है। इनसे प्रोटीन और विटामिन की प्राप्ति होती है। यीस्ट के उत्पादन से कार्बोहाइड्रेट, कार्बनिक नाइट्रोजनिक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। यीस्ट से बहुत से विटामिन, थाइमीन, बायोटीन, निकोटिनिक एसिड, राइबोफ्लेबिन आदि भी प्राप्त होते हैं। 'मारचेला एस्क्यूलेन्टा' का साधारण नाम गुच्छी है। इसको कश्मीर में प्रमुख रूप से उगाया जाता है जहाँ इसे तरकारी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका कवक जाल, गुच्छी भूमि के नीचे होता है, जिसका फल पिण्ड है।

जहाँ उद्यानविज्ञान (हर्टीकल्चर) की शाखाओं, पामोलॉजी, फ्लोरीकल्चर व ओलिरी कल्चर आदि के विकास पर वैज्ञानिकों की नजर लगी हुई है; वहीं इनके समानान्तर एक दूसरे विज्ञान, 'मशरूम कल्चर' को भी आज प्राथमिकता दी जा रही है। 'मशरूम कल्चर' एक ऐसी कृषि विधि है जिसे उन स्थानों पर भी सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है, जहाँ कि अन्य हरे (स्वयं भोजन बनाने वाले) पौधों को सफलतापूर्वक नहीं उगाया जा सकता; अर्थात् कवकों की खेती बड़े पेड़ पौधों के नीचे की परछाईं से लेकर घरों में कमरों के अन्दर तक की जा सकती है जहाँ पौधों के लिए धूप का सीधा मिलना सम्भव नहीं होता। मशरूम एक ऐसा पौधा है जो कि घर के अन्दर बिना निकाई-गुड़ाई, सिंचाई व जुताई के भी बोरों के ऊपर उगाया जा सकता है। इसके लिए जूट के बोरों में पुआल को पानी में भिगोकर भर देते हैं और बोरे को बन्द कर देते हैं। फिर शीशियों में भरे 'फंगस कल्चर' को इन पर छिड़क देते हैं। कुछ ही दिनों में सब्जी और अन्य व्यंजन बनाने के लिए मशरूम उपलब्ध हो जाता है। आज जब वर्ष 2025 तक विश्व की जनसंख्या के दूने हो जाने का अनुमान लगाया जा रहा है, खाद्य समस्या के संभावित विकराल रूप का अनुमान लगाया जा सकता है। इस संदर्भ में वैज्ञानिकों द्वारा 'मशरूम कल्चर' का विकास और व्यापक प्रयोग सामयिक माना जाएगा।

2. पनीर उत्पादन में कवकों की कुछ किस्में, जैसे एसपरजिलस पेनिसिलीयम, कारकेमेम्बरटाई, पेठेराक फोटाई आदि प्रजातियां पनीर बनाने के काम आती हैं।

3. बेकिंग उद्योग : कुछ कवक, जैसे सैकरोमाइसीज सेरिबेसी डबल रोटी बनाने में काम आते हैं। गीले आटे में यीस्ट कोशिकाएं मिलाकर किण्वीकरण (फर्मेन्टेशन) की क्रिया करायी जाती है। यीस्ट स्टार्च को शर्करा और शर्करा को विकरों की सहायता से कार्बनडाई आक्साइड व एल्कोहल में बदल देते हैं। रोटी को भट्ठी में पकाये जाने पर कार्बन डाईआक्साइड के कारण रोटी फूल जाती है और सरंन्ध्र हो जाती है।

4. शराब उद्योग : यीस्ट में 'जाइमेज' नामक एन्जाइम पाया जाता है जो शर्करा को फर्मेन्ट करके एथिल एल्कोहल बनाता है। यही एथिल एल्कोहल शराब के रूप में प्रयोग होता है। शराब की एक किस्म, बीयर, यीस्ट की जाति, सैकरोमाइसीज सेरिवेसी द्वारा किण्वीकरण करके बनती है।

5. अम्ल उत्पादन : कवकों की कुछ प्रजातियाँ विभिन्न प्रकार के अम्लों का उत्पादन करती हैं :

गैलिक अम्ल - पेनिसिलियम ग्लोकम, स्परजिलसग्लोमाइसीज, सैट्रिक अम्ल - साइट्रोमाइसीजीप्रिफेरियर एवं म्यूकर, ग्लूकानिक अम्ल - एस्परजिलस नाइगर

6. विकर उत्पादन : यीस्ट से जाइमेज, एसपरजिलस

एरिजी से एमाइलेज एवं साइकरोमाइसीज सेरिबेसी से इनवरटेज नामक एन्जाइम्स प्राप्त किये जाते हैं।

7. वसा उत्पादन : एसपरजिलस निडुलान्स, ए. साइडोवी ए. फिसोरी; पेनिसिलियम पिसकारम, पे. जुवानिकस, इण्डोमाइसीज वर्नेल्स आदि के द्वारा वसा उत्पन्न किये जाते हैं।

8. प्लास्टिक निर्माण : ओटियम लैक्टिस नामक कवक का उपयोग प्लास्टिक निर्माण में किया जाता है।

9. भूमि का उपजाऊपन : मृतोपजीवी कवक भूमि में पड़े कार्बनिक पदार्थों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं और इन्हें विघटित कर लवण पदार्थ बनाते हैं जो भूमि की उर्वरता बढ़ाते हैं। कुछ कवक प्रोटीन से अमोनिया का निर्माण करते हैं।

10. व्यर्थ कार्बनिक पदार्थों को नष्ट करना मरे हुए जानवरों के शरीर, व्यर्थ टूटे पौधों आदि पर मृतोपजीवी कवक उत्पन्न हो कर उन्हें विच्छेदित करके प्राकृतिक सफाई करने वालों (स्कैवेन्जर्स) के रूप में कार्य करते हैं। इस क्रिया में कार्बनडाईआक्साइड गैस निकलती है जो हरे पौधों द्वारा ग्रहण कर ली जाती है।

11. पौधों के पोषण में : फाइकोमाइसीज, एस्कोमाइसिटीज, बेसिडियो माइसिटीज तथा ड्यूटिरियो माइसिटीज वर्गों के बहुत से कवक 'माइकोराइजी' का निर्माण करते हैं, जो पाइनस. साइकस, जामियाँ आदि पौधों के पोषण में सहायक होते हैं।

12. रोग प्रसार नियन्त्रक के रूप में : बहुत से कवक, जैसे एसकरसोनिया, ऐलेरोइट्स, इसोराफेरिनोसा, इम्पुसा, स्पेसीज आदि पौधों पर कीड़े-मकोड़ों को नष्ट कर उनके द्वारा फैलने वाले रोग कम करते हैं। ब्रिटेन में गेहूं में लगने वाली मादा बलबफलाइ का 60% फ्यूबेरिया बेसियाना नामक कवक द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। इसी प्रकार, एक जलीय कवक, सीलोमा माइसीज द्वारा मच्छर, लार्वा अवस्था में ही नष्ट कर दिये जाते हैं।

13. हारमोन्स उत्पादन : फ्यूसेरियम मोनिली-फार्मो तथा डिमेटियम पालूलान्स नामक कवक से 'जिबरेलिन्स' नामक 'फाइटोहारमोन' प्राप्त होता है जो पौधों की लम्बाई में वृद्धिकारक पाया गया है।

14. जीव वैज्ञानिक खोज : न्यूरोस्पोरा, यीस्ट, एस्कोबोलस आदि कवक काफी समय से आनुवंशिकी, कोशिका विज्ञान एवं चयापचय की खोजों में प्रयोग में लाये जा रहे हैं।

15. औषधि निर्माण : बहुत सी एन्टीबायोटिक औषधियाँ कवकों से बनायी जाती हैं, जिनके द्वारा भयंकर रोगों की रोकथाम करके मानव व पशुओं को मृत्यु से बचाया जा सकता है। 1928 में अलेकजेन्डर फ्लेमिंग (1881-1955) ने सबसे महत्त्वपूर्ण और पहली एन्टी-बायोटिक औषधि, 'पेनसिलीन' की खोज की थी जिसके लिए उन्हें 1945 में नोबेल पुरस्कार दिया गया था। यह औषधि आज भी रोगों के लिए राम-बाण सिद्ध हो रही है। इसी प्रकार, 'वाक्स मैन' ने 1943 में दूसरी एन्टीबायोटिक औषधि, स्ट्रेप्टोमाइसीन की खोज की। बैक्सीन की तरह एन्टी-बायोटिक्स का उत्पादन भी मानव स्वास्थ्य में महत्त्वपूर्ण है। इनके अलावा, अन्य प्रतिजैविक (एन्टी-बायोटिक) औषधियाँ भी कवकों से प्राप्त की जाती हैं, जिनमें क्लोरोटेट्रा साइक्लीन, विनकोमाइसीन, पेनिसिलीन-जी, टेट्रासाइक्लीन, बेसिट्रासीन, कार्बोनिसिलीन, क्लाक्सासिलीन, इरिथ्रोमाइसीन आदि मुख्य हैं। कुछ एन्टी-बायोटिक तथा उनके उत्पादक कवकों के नाम निम्नलिखित हैं :

पेनिसिलीन - पेनिसिलियम नोटेटम, पेनिसिलियम क्राइसोजीनम
इरगोट - क्लेविसेप्स परप्यूरी
स्ट्रेप्टोमाइसीन - स्ट्रेप्टोमाइसीज ग्रेसियस
आरोमाइसीन - स्ट्रेप्टो माइसीज, ओरोफेसियेन्स
एम्पीसिलीन - पेनिसिलियम क्राइसोजीनम
सेपेलोथिन्स - सैफेलोस्पोरियम
क्लोरोमाइसिटीन - स्ट्रेप्टोमाइसीज वेनिजुएलिव
कीटोनिन - कीटोनियम कोनोइड्स
इफैड्रिन - यीस्ट

भारत में पेनिसिलीन दवा का निर्माण उत्तर प्रदेश में हरिद्वार जिले के बीरभद्र में स्थित एन्टीबायोटिक फैक्ट्री में होता है । पेनिसिलियम की लगभग 140 प्रजातियाँ जानी गयी हैं । पूना के निकट, प्रेमपुरी में 'हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक लिमिटेड 'नामक फैक्ट्री में भी स्ट्रेप्टोसीन व पेनिसिलीन औषधियां बनायी जाती हैं ।

हानिकारक गुण : एस्परजिलस नाइगर और एस्परजिलस फ्लेवस नामक कवक मनुष्य के फेफड़ों में ' एस्परजिलोसिस' नामक घातक रोग पैदा करते हैं । केण्डिडा एल्बिकेन्स नामक कवक नवजात शिशुओं में 'थ्रस' और महिलाओं में 'वेजिनाइटिस' नामक बीमारी फैलाता है । संयुक्त राज्य अमरीका में 20% लोग 'हिस्टोप्लाजिमोसिस' बीमारी से ग्रसित पाये गये, जो हिस्टोप्लाज्मा कैप्सूलेटम नामक कवक से फैलती है । यह कवक यीस्ट की तरह 37^0से. पर उगता है और 'पालमोनरी इन्फेक्शन्स' के लिए उत्तरदायी है । पैरों में 'एथिलीट्स फुट' या 'टीनिया पेडिस' नामक बीमारी ट्राइकोफाइटान मेटाग्रोफाइरान नामक कवक से होती है । यूरोप में 'क्रेफिश प्लेग' का कारण एफेनामाइसीज एस्टासी कवक है । ब्रेड में उगने वाला म्यूकर फेफड़ों और मस्तिष्क की बीमारियों के लिए उत्तरदायी है । मनुष्य व जानवरों में ट्राइकोफाइटान टेन्सुरेन्स व ट्राइकोफाइटान डिसक्वाइड्स नामक कवक दाद उत्पन्न करते हैं । क्रिप्टोकोकस नियोफारमेन्स नामक कवक 'क्रिप्टोकोकस मेनिनीग्रस' (मस्तिष्क रोग) करता है । इसके अलावा, यीस्ट नाखूनों, त्वचा तथा फेफड़ों में 'मोनिलियेसिस' रोग पैदा करता है ।

बहुत से कवक इमारती लकड़ी के वृक्षों में रोग फैलाकर हानि पहुँचाते हैं । पालीपोरस नामक कवक लकड़ी के कटे लट्ठों को नष्ट करता है ।

कुछ कवक, जैसे राइजोपस म्यूकर, एस्परजिलस आदि मुरब्बा, अचार, रोटी, जेली, फल आदि में कवक जाल उत्पन्न करके उनको मनुष्यों के खाने के लिए अनुपयुक्त बना देते हैं । कुछ कवक जैसे पेनिसिलियम एक्सपेसम, म्यूकर रिमेन्सस एस्परजिलस ग्लैवीन्स, ए. नाइगर आदि मांस को नष्ट करते हैं । ऐसे फल-पौधे जिनमें प्रोटीन कम (10%) तथा कार्बोहाइड्रेट ज्यादा (80%) पाया जाता है, उनमें मुख्य: मोल्ड और यीस्ट का आक्रमण होता है, जब कि कम कार्बोहाइड्रेट और अधिक प्रोटीन वाले फलों में जीवाणुओं का आक्रमण ज्यादा होता है ।

कुछ कवक कपड़ों, कैमरों, कागज, चमड़े, रबर आदि के बने सामान को हानि पहुंचाते हैं ।

कपड़े नष्ट करने वाले कवक : अल्टरनेरिया, पेनिसिलयम ट्राइकोडर्मा, म्यूकर कीटोनियम आदि ।

कागज नष्ट करने वाले कवक : ए. टारूला, सेफैलोथीकम क्लेडोस्पोरियम, अल्टरनेरियम क्यूसेरम आदि ।

चमड़े का सामान नष्ट करने वाले कवक : ए. नाइगर

रबर का सामान नष्ट करने वाले कवक : पेसिलोमाइसीज एस्प., एस्परजिलस आदि ।

कैमरे आदि के लेन्स नष्ट करने वाले कवक: ए. कैन्डीडस, ए. नोड्यूलान्स, ए. नाइगर; एक्विनोमाइसीज, हेल्मेन्थोस्पोरियम आदि ।

कुछ कवक, जैसे अमांटिया स्प. जो 'एगारिकस' के बदले खा लिये जाते हैं, खाने वाले की मृत्यु कारण बन जाते हैं । कुछ परजीवी कवक, जैसे सैप्रो लेगनिया, मरी हुई मछलियों पर पाया जाता है, जो मछलियों पर भयंकर बीमारी उत्पन्न करता है ।

बहुत से परजीवी कवक हरे पौधों व फलों में रोग उत्पन्न करते हैं । पक्सीनीया तथा आस्टीलोगो नामक कवक गेहूँ - जौ में 'रस्ट' और 'स्मट' उत्पन्न करते हैं । रस्ट में पत्तियों एवं तनों पर काले कत्थई धब्बे बन जाते हैं, जब कि स्मट गेहूँ - जौ की बालियों के दानों को ही एक काले पाउडर में बदल देता है । पौधों में इन बीमारियों की वजह से बहुत सी फसलें - फल आदि नष्ट हो जाती हैं, जिससे प्रतिवर्ष लाखों रुपयों का नुकसान उठाना पड़ता है ।

पौधों में कुछ महत्त्वपूर्ण बीमारियाँ तथा उनके उत्पादक कारक :

	रोग	कवक का नाम
1.	रजिया कुल्यो रोग (ह्वाइट रस्ट आफ कूसीफैरी)	सिस्टोपस कैन्डीडस
2.	क्षोदासिता रोग (पाउड्रीमिल्ड्यू)	इरी साइफी स्प.
3.	सेव का फल सड़न (फ्रुटराट)	पेरोनास्पोरा स्प., राइजोपस स्प.
4.	कूसीफेरी का 'डाउनीमिल्ड्यू'	परनोस्पोरा स्प.
5.	आलू का 'लेट ब्लाइट'	क्राइटोप्थोरा इनफेसटेन्स
6.	धनिया का स्टेमगाल	प्रोटोमाइसीज मैक्रोस्पोरस
7.	गन्ने का रक्त अपक्षय (रेडराट)	कोलेट्रो ट्राइकम फालकेटम
8.	सेव का 'रेडराट' रोग	आरमीलेरिया मेलिया
9.	शकरकन्द का 'शाफ्ट राट'	राइजोपस स्टोलोनिफर
10.	कद्दू कुल का फ्रूट राट	राइजोक्टोनिया स्प.
11.	नवजात पौधे का आर्द्रमारी रोग (डम्पिंग आफ़)	बाइट्रिटिस स्प., पाइथ्रियम स्प, .फाइटोप्थोरा स्प.
12.	पपीते के तने का सड़न रोग (स्टेम राट)	पाइथ्रियम अफेनी डरमेटम
13.	अण्डी का सीडलिंग ब्लाईटफाइटोप्थोरा	फेरासिटिका
14.	नीबू का 'गमोसिसि' रोग	फोइटोप्थोरा-फैरासिटिका फा. पाल्मी बोरा
15.	बाजरा का डाउनी मिल्ड्यू	पेरोनोस्पोरा पेरासिटका
16.	ज्वार का 'डाउनी मिल्ड्यू'	पेरोनास्कलेरोस्पोरा स्प.
17.	सरसों कुल का 'डाउनी मिल्ड्यू'	पेरोनोस्पोरा पैरासिटिका
18.	हल्दी का 'लीफ स्पॉट'	टफ्रीना माकुलाक्स
19.	सेव का 'पाउड्री मिल्ड्यू'	पेडोस्फोरा ल्यूकोट्राइका
20.	धान का 'स्टेमराट'	स्क्लेरीटियम ओरिजी
21.	गेहूँ का लूज स्मट (श्लथस्मट)	अस्टिलोगों ट्राइटिसी
22.	गन्ने का स्मट (कंडवा)	अस्टिलोगों सिटामिनी
23.	मक्का का स्मट (करंजुआ)	अस्टिलागों मेडिस
24.	ज्वार का ग्रेन स्मट (कंडवा)	स्फीसीलीथीका सारगी
25.	गेहूँ का 'बन्ट स्मट'	टेलिटिया करीज
26.	गेहूँ का 'करनाल बन्ट'	नियोसिया इण्डिका, टिलेटिका ट्राइटिसी
27.	धान का 'लीफ स्मट'	इण्टिलोमा ओराइजी'
28.	मूँगफली का 'लीफ स्पाट' (टिक्का रोग)	सर्कोस्पीरीडियम परसोनेटम
29.	गेहूँ का 'अर्ली ब्लाइड'	अल्टरनेरिया सोलानी
30.	अलसी का 'रस्ट'	मालम्प्सोरा लिनाई
31.	सरसों का 'अल्टरनेरिया लीफ स्पाट'	अल्टरनेरिया - बेसीसिकोला
32.	गेहूँ का 'लीफ ब्लाइट'	अल्टरनेरिया टेनुइस
33.	मिर्च का रिपराट एवं ड्राई बैक	कोलोट्रोइकम-कैप्सिसी
34.	कपास का 'बिल्ट'	फयूसेरियम आक्सीस्पोरम
35.	चने का 'ब्लाइट'	फाइलोस्टिका रॉबी
36.	गन्ने का 'रिंग स्पाट'	लिप्टोस्फोरिया सकैरी

यह तो सर्वविदित है कि नीम की पत्तियाँ फल-फूल आदि तो स्वाद में बहुत कड़वी होती हैं, किन्तु दूसरी ओर इनके बहुत लाभ भी हैं । इसी प्रकार, कवक जहाँ पौधों को अनेक हानियां पहुँचाते हैं, वहीं पर ये एन्टीबायोटिक व अन्य औषधियां प्रदान कर हमारे लिए जीवन दाता भी सिद्ध होते हैं ।

* * *

''वैज्ञानिक'' का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका ''वैज्ञानिक'' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर इसका नवीनीकरण करा लें । ''वैज्ञानिक'' के लिफाफे पर शुल्क सम्बन्धी जानकारी दी जाती है । यदि सम्भव हो तो आजीवन सदस्य बन जाएँ ।

– सम्पादक

एंटी-बायोटिक्स

सत्य देव पाण्डेय
ग्राम - महुआ
पोस्ट - जयतापुर अतरौला (गोंडा), उ.प्र.

एंटीबायोटिक्स दवाएं सामान्य व्यक्ति की स्व-चिकित्सा के लिए नहीं होती हैं। इन्हें चिकित्सक की सलाह पर उसकी बतायी गयी मात्रा में ही लेना चाहिए। ये दवाएं उपयोगी होने के साथ-साथ, हानिकारक भी होती हैं। इन दवाओं की सामान्य जानकारी प्रस्तुत है।

एण्टीवायोटिक्स वे कार्बनिक पदार्थ हैं जो सूक्ष्म जीवों की किण्वन विधि द्वारा बनते हैं, तथा सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को रोक देते हैं , अथवा उन्हें बिल्कुल नष्ट कर देते हैं। प्राय: ये जीवाणु तथा फफूँद से प्राप्त होते हैं। कुछ प्रकार के सूक्ष्म जीव एक से अधिक एण्टीवायोटिक्स बनाते हैं। इसके विपरीत, एक-ही एण्टीवायोटिक्स अनेक सूक्ष्म जीवों से प्राप्त किया जा सकता है। ये बहुत ही महत्वपूर्ण पदार्थ हैं क्योंकि इनका उपयोग जन्तु एवं वनस्पतियों के रोग-उपचार के लिए दवाइयों की तरह किया जाता है। कुछ दूसरे प्रकार के एण्टीवायोटिक्स विभिन्न प्रकार के रोग फैलाने वाले सूक्ष्म-जीवों के विरुद्ध प्रभावी होते हैं। पहले प्रकार के व्यापक परास (ब्रॉड स्पेक्ट्रम) एण्टीवायोटिक्स तथा दूसरे प्रकार के सीमित परास (नेरो स्पेक्ट्रम) एण्टीवायोटिक्स कहलाते हैं। पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, इरिथोमाइसिन, पोलिमिक्सिन, ओलिएण्डोमाइसिन एवं बेकेमाइसिन व्यापक-परास एण्टीवायोटिक्स हैं, तथा क्लोरोमाइसीटिन, ऑक्सीटेट्रासाइकिलिन एवं एम्पीसिलिन सीमित परास एण्टीवायोटिक्स हैं ।

आज कल एण्टीवायोटिक्स दवाओं का उपयोग संक्रामक बीमारियों के उपचार के लिए हमारे देश में बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। ये बीमारियां अधिकतर जीवाणुओं या विषाणुओं से तथा कभी-कभी फफूँदों एवं प्रोटोजोअन्स के द्वारा फैलती हैं। जीवाणुओं के संक्रमण से क्षयरोग, टाइफाइड, पेचिश, निमोनिया, मूत्राशय तथा योनि रोग हो जाते हैं, जबकि विषाणुओं के संक्रमण से पीलिया, इन्फ्लाएन्जा तथा खसरा इत्यादि रोग हो जाते हैं। इन संक्रामक रोगों के उपचार के लिए प्रस्तुत सभी एण्टीवायोटिक्स औषधियाँ अधिक्तर जीवित जीवाणुओं से ही तैयार की जाती हैं। आधुनिक युग में विज्ञान की प्रगति से कुछ एण्टीवायोटिक दवाइयाँ, जैसे क्लोरोमाइसीटिन अब संश्लेषण विधि से भी तैयार की जाने लगी हैं, और इनका उत्पादन हमारे देश में बड़े पैमाने पर हो रहा है।

वर्ष 1944 तक संक्रामक रोगों का कोई प्रभावकारी उपचार नहीं था। तभी अलैक्जेंडर फ्लैमिंग ने द्वितीय महायुद्ध के बाद पेनिसिलिन जैसी महत्वपूर्ण एण्टीवायोटिक औषधि का आविष्कार किया। आज हज़ारों एण्टीवायोटिक्स औषधियों का आविष्कार हो चुका है जिनमें से अनेक दवाइयां अनेक तरह के संक्रामक रोगों के उपचार में कारगर सिद्ध हुई हैं। एण्टीवायोटिक्स की खोज से पहले क्षयरोग एक असाध्य रोग समझा जाता था, और इस से पीड़ित रोगी को केवल प्राकृतिक चिकित्सा, जैसे शुद्ध व ताजी हवा तथा पौष्टिक आहार पर ही रखा जाता था, परंतु आज स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा अन्य शक्तिशाली एण्टीवायोटिक्स के आविष्कार से इस रोग पर पूर्ण रूप से नियत्रंण पा लिया गया है।

आजकल प्रयोग में आनेवाली कुछ मुख्य एण्टीवायोटिक औषधियों, जैसे टेट्रासाइक्लिन, जैनिटिमाइसिन, हामार्सिन इत्यादि का आविष्कार भारत वर्ष में ही हुआ है। इनका आविष्कार हिन्दुस्तान एण्टीवायोटिक्स, ऋषिकेश (वीरभद्र) में तथा सेन्ट्रल ड्रग रिसर्च इन्स्ट्रीट्यूट, लखनऊ द्वारा किया गया है। ये दवाएं जीवाणुओं से बनायी जाती हैं। कुछ मुख्य मुख्य एण्टीवायोटिक्स तथा उनकी निर्माण विधि निम्नलिखित है :

पेनिसिलिन - यह प्रथम एण्टीवायोटिक है जिसका उत्पादन व्यापारिक तौर पर किया गया था। आजकल पेनिसिलिन पेनिसिलियम फफूँद की दो जातियों, पेनिसिलियम नोटेटम तथा पेनिसिलियम क्रिसोजेनम के किण्वन द्वारा प्राप्त की जाती है। यह

कुछ जीवाणुओं, जैसे स्टफोइलोकोकाई, स्ट्रोप्टोकोकाई, न्यूमोकोकाई, मैनिगोकोकाई के विरुद्ध प्रभावी है। इसका उपयोग बहुत से संक्रामक रोगों के उपचार के लिए किया जाता है। आज कल कई प्रकार की पेनिसिलिन ज्ञात हैं तथा ये अर्द्धसंश्लेषित रूप में भी एम्पीसिलिन के नाम से तैयार की जाती हैं जो व्यापक परास की है, तथा ग्राम निगेटिव तथा ग्राम पॉजिटिव, दोनों ही प्रकार के जीवाणुओं के विरुद्ध प्रभावी है।

स्ट्रेप्टोमाइसिन - यह स्ट्रेप्टोमाइसिज ग्रेसियस से प्राप्त किया जाता है जो एक्टिनोमाइसोटेलिज ऑर्डर का सदस्य है और ग्राम मिट्टी में पाया जाता है। यह विशेष रूप से ग्राम निगेटिव जीवाणुओं तथा क्षयरोग पैदा करनेवाले जीवाणु, माइको वैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस के विरुद्ध अति प्रभावी होता है। यह कुछ ग्राम पॉजिटिव जीवाणुओं के विरुद्ध भी प्रभावी होता है। इसके उपयोग से कुछ ऐसे संक्रामक रोग नियन्त्रित हो जाते हैं जो साधारणतथा पेनिसिलिन से नियन्त्रित नहीं होते हैं। इस का उपयोग पौधों के रोग नियंत्रण में भी किया जाता है। इस की खोज शाट्ज बगी एवं वाक्समेन ने की थी। इन्होंने मिट्टी से श्ट्रेप्टोमाइसीज ग्रेसियस को प्रथक किया जिससे आज कल व्यापारिक पैमाने पर स्ट्रेप्टोमाइसिन तैयार किया जाता है।

क्लोरमफैनीकोल - यह क्लोरोमाइसिटिन के नाम से भी जाना जाता है। यह एक व्यापक परास का एण्टीवायोटिक है जिसको सर्वप्रथम 1947 में बर्क्होल्डर ने जीवाणु की एक जाति से जिसे स्ट्रेप्टोमाइसीज वेनेजुली कहते हैं, प्राप्त किया था। यह मनुष्य के कुछ जीवाणु जनित रोगों के उपचार में अति प्रभावी है। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य एण्टीवायोटिक्स हैं जो किण्वन के द्वारा बनते हैं। इनमें से टेट्रासाइक्लीन, पौलीमिक्सन, इरिथ्रोमाइसिन, कार्बोमाइसिन, कौनामाइसिन, निस्टन एवं ग्राइसोफलविन मुख्य हैं जिनको वर्तमान में विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयोग किया जाता है, जो तालिका में दिये गये हैं।

विभिन्न सूक्ष्म जीव तथा उनसे प्राप्त एण्टीवायोटिक

एण्टीवायोटिक्स	किण्वन विधि से उत्पादन करनेवाले सूक्ष्म जीव	सूक्ष्म जीव जिनके विरुद्ध वे क्रियाशील हैं
पौलिमिक्सन	वेसीलस पौलिमिक्सा जीवाणु	ग्राम निगेटिव जीवाणु
वैसीट्रेसिन	वेसीलस लाइकनिस्पोरीमस जीवाणु	पेनिसिलिन के समान
	फफूंद	
ग्रीसियोफल्विन	पेनिसिलिन, ग्राइसोफ्लविन एवं पे. नाइग्रीकन्स	रोग जनक फफूंद
	स्ट्रेप्टोमाइसेस	
क्लोरोटेट्रासाइक्लीन	स्ट्रेप्टोमाइसीज ओरोफेसिएस	व्यापक परास
ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन	स्ट्रेप्टोमाइसीज राइमोसस	व्यापक परास
कोनामाइसिन	स्ट्रेप्टोकोनामाइसीटीकस	ग्राम पॉजिटिव जीवाणु
इरिथ्रोमाइसिन	स्ट्रेप्टो इरिथ्रयस	ग्राम निगेटिव जीवाणु
निस्टेटिन	स्ट्रेप्टो नोरेसी	फफूंद
कार्बोमाइसिन	स्ट्रेप्टो हैल्टेडी	ग्राम पॉजिटिव जीवाणु
ओलियण्डोमाइसिन	स्ट्रेप्टो एण्टीवायोटिक्स	स्टेफाइलोकोकाई
नियोमाइसिन	स्ट्रेप्टो फ्रेडी	जीवाणु
क्लोरम फेनीकोल	स्ट्रेप्टो वेनी जुली	ग्राम निगेटिव जीवाणु

चिकित्सक अधिकतर एण्टीवायोटिक्स का उपयोग जीवाणु - संवर्धन संवेदी परीक्षण के बाद ही करते हैं। पहले चिकित्सक उस जीवाणु का, जिसके कारण व्यक्ति रोग ग्रस्त होता है, पोषक माध्यम में कृत्रिम रूप से संवर्धन कराते हैं। ये जीवाणु रोगी के खून, थूक तथा पेशाब में अथवा अन्य संक्रमित भाग में हो सकते हैं जिसका का नमूना दिया जाता है और उसको ऐसे पोषक माध्यम पर रखा जाता है जिसमें 24-48 घण्टे के अंदर जीवाणुओं का संवर्धन हो जाता है, अर्थात संवर्धन माध्यम में जीवाणु प्रगुणन हो जाता है, और उन्हें सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है। इसके पश्चात, इन पर विभिन्न एण्टीवायोटिक्स की मारक शक्ति देखने के लिए फिल्टर पेपर की एक - ही व्यास वाली अनेक डिस्कों को एण्टीवायोटिक्स के घोल में भिगोकर सुखा लेते हैं तथा उनको उस माध्यम पर रखते हैं, जिस पर रोग पैदा करनेवाले जीवाणु का संवर्धन कराया गया होता है। इस माध्यम में जीवाणु की वृद्धि होती है, लेकिन यह वृद्धि उस पेपर डिस्क के आस-पास जिसमें एन्टीवायोटिक है, नहीं होने पाती। डिस्क के आस-पास जितने भाग में जीवाणु की वृद्धि नहीं होती, वह भाग एक वंध्य घेरे के रूप में प्रतीत होता है। इस घेरे को निरोधी अनुक्षेत्र कहते हैं जिस का व्यास एण्टीवायोटिक की मारक शक्ति का समानुपाती होता है, अर्थात् एण्टीवायोटिक की जितनी अधिक मारक शक्ति होगी, वह अनुक्षेत्र उतना ही अधिक बड़ा बनेगा। इस प्रकार, जो एण्टोवायोटिक सबसे अधिक मारक शक्तिवाला होता है, अथवा रोग पैदा करनेवाला जीवाणु जिस एण्टीवायोटिक के लिए सबसे अधिक संवेदन शील होता है, उसी एक एण्टीवायोटिक की एक निश्चित मात्रा रोगी को प्रायोगिक तौर पर दी जाती है। दवा की यह मात्रा रोगी की शारीरिक दशा तथा रोग की तीव्रता पर निर्भर करती है। लेकिन, कभी-कभी रोगी की दशा इतनी गंभीर हो जाती है कि संवर्धन एवं संवेदनशीलता परीक्षण किये बिना ही एण्टीवायोटिक का उपयोग करना पड़ जाता है, क्योंकि संवर्धन एवं परीक्षण में 1-2 दिन का समय लग सकता है, तथा कहीं-कहीं पर इसकी पर्याप्त सुविधा भी नहीं होती है।

निश्चय ही, एण्टीवायोटिक्स के प्रयोग से बीमारियों की संख्या तथा मृत्यु - दर में काफी कमी आयी है, लेकिन ये दवाएँ अक्सर आदमी के शरीर में अनेक प्रकार से हानि भी पहुँचाती हैं। एण्टोवायोटिक्स का प्रयोग यदि उचित मात्रा में एवं उचित रूप से न किया जाए, तो ये दवाएँ लाभप्रद न होकर हानिकारक हो जाती हैं। पेनिसिलिन जैसी क्लोरोमाइसीटिन नामक एण्टीवायाटिक के अधिक मात्रा में सेवन से रक्ताल्पता तथा एग्रेनूबोसाईटोसिस जैसी बीमारियां हो जाती हैं। कई एण्टीबायोटिक्स हमारे पाचन संस्थान में उपस्थित विटामिन-बी उत्पन्न करनेवाले लाभकारी जीवाणुओं को भी नष्ट कर देती हैं जिससे हमारी पाचन क्रिया खराब हो जाती है तथा मुँह में छाले हो जाते हैं। एण्टीवायोटिक्स के गलत एवं अनियमित प्रयोग से रोग पैदा करनेवाले जीवाणु एण्टीवायोटिक के विरुद्ध प्रतिरोधक शक्ति पैदा कर लेते हैं और फिर उन एण्टीवायोटिक्स से नहीं मरते; उदाहरणतः यदि चिकित्सक किसी एण्टीवायोटिक्स को 4-4 या 6-6 घण्टे बाद लेने की हिदायत दे, तो ऐसा ही करना चाहिए जिससे रोगी के रक्त में एण्टीवायोटिक की निश्चित मात्रा बनी रहे जो रोग पैदा करनेवाले जीवाणुओं के साथ लड़ने के लिए बहुत आवश्यक है। कुछ एण्टीवायोटिक्स, जैसे पेनिसिलिन के लेने से कुछ लोगों में एलर्जी हो जाती है। ऐसी एण्टीवायोटिक्स को देने से पहले बहुत कम मात्रा में त्वचा के ठीक नीचे परीक्षण इन्जेक्शन दिया जाता है। कुछ समय पश्चात, इन्जेक्शन देने के स्थान पर एक लाल रंग का बड़ा चक्र बन जाता है। इससे पता चलता है कि रोगी पेनिसिलिन के लिए एलर्जिक है। ऐसी अवस्था में, दूसरी एण्टीवायोटिक्स दवा का प्रयोग करना चाहिए। यदि परीक्षण करने पर एलर्जी का प्रमाण मिलने पर भी पेनिसिलिन का इन्जेक्शन दे दिया जाय, तो रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। अतः एण्टीवायोटिक्स का प्रयोग डाक्टर की सलाह से ही करना चाहिए।

* * *

किसे हम जीवित कहें ?

डा. विनोद कुमार गुप्त
प्राणि विज्ञान विभाग,
सी.एम.डी. महाविद्यालय,
बिलासपुर - 495001 (म.प्र.)

जैविकी में यह वास्तविक समस्या है कि जीवित किसे कहा जाए। कई विषाणु (वाइरस) जिनमें केवल आर.एन.ए. ही होता है, सैकड़ों वर्षों तक निष्क्रिय परन्तु सुप्त अवस्था में तब तक बने रह सकते हैं, जब तक कि उन्हें किसी जीवित कोशिका का अनुकूल वातावरण प्रगुणन करने के लिए प्राप्त न हो जाए। ऐसे विषाणुओं को चैतन्य कहें या जड़ ? भारतीय आधुनिक अनुसन्धान के परिप्रेक्ष्य में इस विषय की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत है।

आज इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में मानव अपनी बौद्धिक क्षमताओं से जहां एक ओर सुंदर अंतरिक्ष में बसने की बात सोच रहा है, वहीं अपनी प्रयोगशाला की परखनली में जीव की उत्पत्ति के रहस्य को भी जान लेने की जिज्ञासा उसके मन में है। पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति को लेकर वैज्ञानिकों को मुख्य रूप से तीन प्रकार की संभावनाएं प्रतीत होती हैं। पहली, जीव संक्रमण की भांति किन्हीं दूसरे ग्रहों से पृथ्वी पर आ गया है। दूसरी, पृथ्वी पर जीव गुरूत्वाकर्षण की तरह पहले से ही विद्यमान था, और तीसरी संभावना यह हो सकती है कि पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति एक क्रमिक विकास के बाद हुई। इतने विकसित जीव की उत्पत्ति बिना विकास के बिलकुल तर्कसंगत नहीं लगती। यदि जीव की उत्पत्ति क्रमिक विकास के फलस्वरूप हुई है, तो निश्चय ही प्रारम्भिक जीव की प्रकृति आज के जीव की अपेक्षा बिलकुल भिन्न रही होगी, इसलिए जीवित की परिभाषा जानने के लिए हमें उन न्यूनतम लक्षणों को जानना होगा, जिनके उत्पन्न होते ही अजीवित पदार्थ जीवित की श्रेणी में आ पहुँचते हैं। प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक ए.आई. ओपेरिन और इंग्लैंण्ड के जीव वैज्ञानिक प्रो. जे. बी. एस. हाल्डेन के अनुसार यदि जीव की उत्पत्ति एक क्रमिक विकास के बाद हुई है, तो हम आण्विक विकास से सोचना प्रारम्भ कर सकते हैं।

उन्होंने आण्विक विकास की परिभाषा देते हुए यह कहा कि यदि हम यह मान लें कि प्रारम्भिक जीव भी उन्हीं पदार्थों का बना रहा होगा जिनका कि आज का जीव बना हुआ है, तो यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक वायुमंडल में रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप अन्ततः अणुओं का निर्माण हुआ। इन्हीं अणुओं ने लगभग साढ़े तीन खरब वर्षों के क्रमिक विकास के बाद जीव को जन्म दिया। उन अवस्थाओं में पहले रासायनिक विकास हुआ और फिर उसके बाद जैविक। इतने लम्बे समय तक घटित होने वाले परिवर्तनों को मानव निर्मित्त कृत्रिम प्रयोगशाला में समझ पाना संभव नहीं है, इसलिए आज के वैज्ञानिक उस वायुमंडल की खोज कर रहे हैं, जो प्रारम्भिक जीव बनते समय रहा होगा। प्रयोगशाला में प्रारम्भिक वायुमंडल कृत्रिम रूप से निर्मित करके वैज्ञानिक उसमें संश्लेषित होने वाले पदार्थों या जीव रसायनों का अध्ययन कर रहे हैं। जीव जैसा कि हम चलता-फिरता, खाता-पीता देखते हैं, नहीं बनाया जा सकता।

मोटे तौर पर जीव की परिभाषा में हम यह कह सकते हैं कि किसी भी संरचना को जीवित कहने के लिए उसमें तीन बातों का होना बहुत आवश्यक

है, जैविक क्रिया, विकास या वृद्धि और प्रजनन । जैविक क्रिया से मतलब है, बाह्य वातावरण से कोई सामग्री लेकर अपने अन्दर समाहित करना और उससे ऐसे पदार्थ बनाना जिसका कि वह स्वयं बना हुआ हो, उदाहरण के लिए, जैसे खाना खाना या सांस लेना । वृद्धि से मतलब है अपने आकार में भीतर से वृद्धि करना, और प्रजनन से अभिप्राय है, अपने ही अनुरूप अन्य इकाइयाँ उत्पन्न करना । जीव वैज्ञानिकों ने प्रारम्भिक वायुमंडल में कुछ आद्य कोशिकाओं के समान कृत्रिम प्रारम्भिक कोशिका संश्लेषित करने में सफलता प्राप्त की है । इनमें रूस के प्रो. ओपेरिन के 'कोसरवेट्स', अमेरिका के डा. सिडनी डब्लू. फाक्स के 'माइक्रोस्फियर्स' और भारत के डा. कृष्ण बहादुर के द्वारा निर्मित "जीवाणु" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इन संरचनाओं में डा. बहादुर के द्वारा संश्लेषित जीवाणु वृद्धि, विकास और प्रजनन की क्रिया कर सकने में समर्थ हैं । अब प्रश्न उठता है कि इस तरह की कृत्रिम संरचनाओं को जीवित मानें या नहीं ? इस प्रश्न को हल करने के लिए हम जीव की परिभाषाओं को दो श्रेणियों मे रख कर विचार कर सकते हैं ।

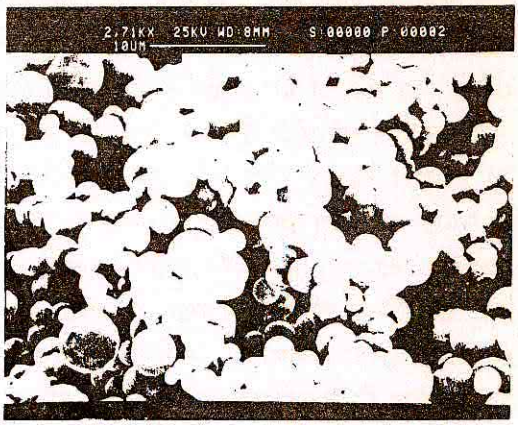

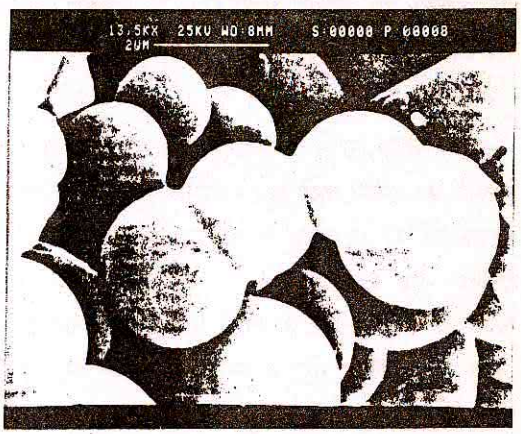

पहली श्रेणी में कौलरिज की परिभाषा ले सकते हैं जो उसने वर्ष 1820 में दी थी । कौलरिज ने कहा कि जीवन अपने सम्पूर्ण रूप में ही पूर्व कल्पित है, या फिर, अंग्रेज वैज्ञानिक हाल्डेन का कहना है कि ऐसी संरचना को हम जीवित कह सकते हैं जिसके विभिन्न अंश परस्पर सहयोग कर सकने में समर्थ हों, परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक जीव की उत्पत्ति को पूर्व कल्पित मानने के लिए तैयार नहीं हैं । इसके पीछे उन्हें प्राकृतिक जैव इन्जीनियरिंग का ही हाथ जान पड़ता है । इस प्रकार की परिभाषाओं को हम टीलोनौमिक परिभाषाएं कह सकते हैं । दूसरे प्रकार की परिभाषाओं का गठन विकास के फलस्वरूप बनने वाली इकाइयों के लक्षणों का अध्ययन करने के स्थान पर विकास की मूल-भूत आवश्यकताओं से है । इन्हें हम अनुवांशिकीय परिभाषाएं कह सकते हैं, जैसे मेनार्ड स्मिथ नामक वैज्ञानिक ने वर्ष 1975 में कहा कि किसी जीवित संरचना में विभाजन और अनुवांशिक गुणों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में ले जाने वाले लक्षणों का होना आवश्यक है । हारोविट्ज ने 1959 में कहा कि स्वत: प्रजनन, उत्परिवर्तन और विषमउत्प्रेरण की क्रियाओं का प्रदर्शन करने वाली संरचनाओं को हम जीवित कह सकते हैं । 1957 में जीव की उत्पत्ति पर हुए पहले अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन में जीव की परिभाषा पर बहस के दौरान यह पाया गया कि सभी प्रस्तावित

परिभाषाओं में केवल प्रजनन के लक्षण को मुख्य मान कर किसी संरचना को जीवित नहीं कहा जा सकता। इस संदर्भ में ब्राउन्सटाइन ने कोशिका में पाये जाने वाले डिआक्सीराईबो न्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) का उदाहरण देते हुए कहा, यदि ऐसा होता है, तो डी.एन.ए. का अणु अपने ही अनुरूप एक अन्य डी.एन.ए. का अणु बनाने की क्षमता रखता है तो क्या उसे जीवित की श्रेणी में रखा जा सकता है ? संक्षेप में, लाक्षणिक गुणों पर आधारित परिभाषा तो शायद हमेशा ही विवादास्पद रहेगी। इसलिए यदि हम जीव बनने के पहले वायुमंडल की प्रकृति और परिस्थितियों का अध्ययन करें, तो अधिक तर्क संगत होगा।

वैडिंगटन ने दोनों प्रकार की परिभाषाओं को मिलाने का प्रयास करते हुए कहा कि विकास तो ऐसी संरचनाओं का भी होता है जो प्रजनन नहीं करती हैं, इसलिए हम यह कहें कि जो संरचना विकास की क्रिया से गुजर सकने में समर्थ है, वही जीवित है। आज के वैज्ञानिक युग में जब हम जीवित की बात करते हैं, तो साधारणतया हमारा मतलब कार्बनिक पदार्थों, जैसे अमीनो एसिड, वसा तथा शर्करा आदि से बनी संरचनाओं से होता है। पर हाल ही में ग्लासगो विश्व विद्यालय के डा. कान्स स्मिथ का कहना है कि प्रारम्भिक वायुमंडल में कार्बनिक की अपेक्षा अकार्बनिक की संभावना अधिक जान पड़ती है। भारतीय वैज्ञानिक डा. कृष्ण बहादुर का कहना है कि प्रारम्भिक वायुमंडल में विशेष प्रकार के अणु/परमाणु रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप एक विशेष क्रम में व्यवस्थित हो गये और इन्हीं के सम्मिलित गुणों के समावेश से अजीवित पदार्थ जीवित संरचनाओं में परिवर्तित हो गये, और फिर वृद्धि, विकास और प्रजनन की क्रियाओं का प्रदर्शन करने लगे। इसे समझने के लिए यदि हम कम्प्युटर की शैली में कहे, तो शायद इस प्रकार से कहेंगे कि आण्विक हार्डवेयर में उपस्थित साफ्टवेयर यानि कि सूचना का विकास हुआ जिसने जीव को जन्म दिया। पदार्थ की सत्ता की भांति जीवन भी एक अनंत श्रंखला है।

* * *

परमाणु आया बिजली लाया

विज्ञान ने करिश्मा दिखलाया
परमाणु आया, बिजली लाया।

समाज बदले, सभ्यता बदले
देश की हालत ऊर्जा बदले
सुख सुविधा मनोरंजन के साधन
मांगे निरंतर विद्युत उत्पादन
मन वांछित फल पाया।

लकड़ी कोयला तेल खत्म हो जाएंगे
भावी पीढ़ी को क्या मुंह दिखायेंगें
मानव आदि युग में पहुंचेगा
बिन ऊर्जा हम पिछड़ जाएंगे
रह जाएगा इक साया।

परमाणु है ऊर्जा का असीमित भंडार
परमाणु बिजली घर मांगे थोड़ा स्थान
न धुआं न राख, है अति साफ
आबादी से दूर, न डूबे कोई गांव
फिर मानव क्यों भरमाया।

विकिरण परमाणु ऊर्जा के संग
लोग सोचें यह डाले रंग में भंग
मानव है रहता जन्म जन्मांतर से
प्रकृति जनित विकिरण के संग
यह तो हमारा हमसाया।

मेघ सचदेव
न्यूक्लिअर पावर कारपोरेशन
विक्रम भवन, बंबई - 400 094.

ताप - विद्युत गृह हेतु जलधारा

उदय वीर सिंह
अधीक्षण अभियंता
टाण्डा तापीय शक्ति परियोजना
विद्युत नगर, फैजाबाद

ताप-बिजलीघर हेतु भी पानी की पर्याप्त आवश्यकता होती है जिसका बिजलीघर के कई यंत्रों में भेजने से पहले विभिन्न रसायनों से उपचार किया जाता है। एक मध्यम क्षमता के ताप-बिजलीघर की पानी की आवश्यकता की पूर्ति के उपाय एक अभियंता की लेखनी से प्रस्तुत हैं।

उत्तर प्रदेश के फैजाबाद शहर से लगभग 55 कि.मी. पूर्व, सरयू के पावन तट पर स्थित है छोटा-सा गाँव, विद्युत नगर (टाण्डा)। यहीं से शुरू होती है प्रकृति को क्रमबद्ध करके धरती से निकाली गयी जलधारा की यात्रा। यह जलधारा कभी जलाशय, कभी तालाब, कभी झील, कभी पाइपों में सिमटती हुई लगभग एक कि.मी. की यात्रा तय करके अभियन्त्रण ज्ञान के संगम, टाण्डा ताप विद्युत गृह तक पहुँचती है। टाण्डा ताप विद्युत गृह में 110 मेगावाट क्षमता की चार मशीनों के परिचालन के लिए 45 घन फुट प्रति सेकेन्ड की गति से चलने वाली जलधारा की आवश्यकता है।

जलधारा के स्रोत

टाण्डा ताप विद्युत गृह के जल की आपूर्ति के दो मुख्य स्रोत हैं :

1. तीन अरीय संग्राहक (रेडियल कलेक्टर) कुएं : सरयू तट पर तीन अरीय संग्राहक कुएं हैं। प्रत्येक अरीय कुआं 24 मी. गहरा 5 मी. व्यास का कांकरीट का बनाया गया है। इस कुएं में धरती की निचली सतह का पानी एकत्र करके गिराने के लिए अरीय, यानि त्रिज्या की दिशाओं में 30 सें.मी. व्यास के 30 मी. लम्बे 10 पाइप कुएं की निचली सतह से 1 मी. ऊँचाई की दीवार में धँसाये गये हैं। यही प्रबन्ध पुन: एक-एक मीटर की ऊँचाई पर दो अन्य सतहों पर भी किया गया है, अर्थात् 30 मी. लम्बे 30 सें.मी. व्यास के ३० पाइप धरती की निचली सतह का पानी तीन अरीय कुओं में निरन्तर गिराते रहते हैं। कुओं की ऊपरी सतह पर 325 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी खींचने वाले 4 पम्प लगे हैं जो कुओं से पानी खींचकर पाइप के द्वारा विद्युत गृह की ओर भेजते रहते हैं। तीनों कुओं से 22.5 घनफुट प्रति सेकेन्ड की गति से जलधारा विद्युत गृह की ओर भेजी जाती है या एक विशाल जलाशय में एकत्रित की जाती है।

2. महरीपुर पम्प नहर : महरीपुर पम्प नहर से 22.5 घनफुट प्रति सेकेन्ड पानी खींचकर विद्युत गृह की ओर ले जाने या जलाशय में गिराने का भी प्रबन्ध है। नहर का पानी जलाशय के पास पहुँचते ही एक टैंक में गिरता है और टैंक का पानी पम्प द्वारा उठाकर या तो जलाशय में गिरता है या सीधे विद्युत गृह की ओर भेजा जाता है। इस प्रयोजन के लिए 1500 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी चढ़ाने वाले 4 पम्प जलाशय के किनारे लगाये गये हैं।

5 मी. गहरे तथा 7 लाख घनमीटर जलभरण क्षमता के एक जलाशय में यह जलधारा गिरती है। जलाशय एक दीवार से दो भागों में विभक्त है। जलाशय के चारों ओर फूलों से सुसज्जित लताएं इसे आकर्षण प्रदान करती हैं।

जलाशय का सम्पूर्ण जल 1500 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी फेंकने वाले चार पम्पों के द्वारा विद्युत गृह की ओर जाने वाली पाइप में आवश्यतानुसार गिराया जाता है। इस पाइप लाइन

जल धारा की मात्रा सरयू तट पर बने ट्यूबवेल से बायलर तक

की जलधारा का कुछ भाग सर्कुलेटिंग वाटर पम्प हाउस की ओर तथा शेष भाग राख फेंकने के संयंत्रों की ओर भेजा जाता है ।

सर्कुलेटिंग वाटर पम्प हाउस में 9 सर्कुलेटिंग वाटर पम्प हैं । प्रत्येक पम्प 8275 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी खींच कर विद्युत गृह के कन्डेंसर में भाप ठंडा करने के लिए भेजता है । अरीय संग्राहक कुआँ, महरीपुर नहर या जलाशय से लिया गया पानी सर्कुलेटिंग वाटर पम्प हाउस के सामने बने हुए तालाब में गिरता है । 6 मी. गहरे इस तालाब से पानी खींचकर सर्कुलेटिंग वाटर पम्प कन्डेंसर की ओर भेजते रहते हैं । कन्डेंसर से निकला गर्म पानी कूलिंग टावर में ठन्डा होता है और पुनः उपरोक्त तालाब में गिरता है, अर्थात् पानी बार-बार सर्कुलेट करता रहता है । तालाब में फंगस नष्ट करने के लिए क्लोरीन का घोल समय-समय पर गिराते रहते हैं ।

सर्कुलेटिंग वाटर पम्प हाउस में 260 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी फेंकने वाले तीन सर्विस वाटर पम्प लगे हैं । सर्विस वाटर पम्प भी उपरोक्त तालाब से पानी खींचकर विद्युत गृह की छत पर लगे सर्विस वाटर टैंक में भेजते रहते हैं, जहाँ से पानी ब्वायलर की धुलाई, कोयले की उड़ती धूल पर छिड़काव आदि, विविध प्रयोजनों के काम आता है ।

सर्कुलेटिंग वाटर पम्प हाउस के तालाब से अग्नि शमन के पानी की आपूर्ति करने वाले पम्प भी पानी खींचते रहते हैं । इस कार्य के लिए 273 घनमीटर प्रतिघन्टे की गति से पानी फेंकने वाले 5 पम्प लगे हैं; दो हाइड्रेंट पम्प, एक ट्रांन्सफार्मर की आग बुझाने के जल की आपूर्ति का मलटी फायर पम्प और दूसरा, आपात स्थिति के लिए डीजल पम्प, एक समय-समय पर पानी के वांछित दाब को सुनिश्चित करने के लिए और 11 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी फेंकने वाले दो जाकी फायर पम्प भी उपरोक्त तालाब से ही पानी खींचते हैं ।

तालाब से पानी खींचने के लिए 3 रॉ वाटर पम्प भी लगे हैं । 550 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी फेंकने वाले ये पम्प विद्युत गृह के जल शोधक संयंत्रों के जल के स्रोत हैं । रॉ वाटर पम्प से निकला पानी फ्लैश मिक्सर से गुज़ारा जाता है, जहाँ जल की कार्बनिक अशुद्धियाँ दूर करने के लिए इसका सम्पर्क फिटकरी, चूना, क्लोरीन तथा कोएगूलेटिंग एजेन्ट जैसे रासायनिक घोलों से कराया जाता है । सभी कार्बनिक अशुद्धियाँ पानी की सतह पर तैरने लगती हैं । तैरती अशुद्धियाँ लिये जल 31 मी. व्यास तथा 6 मी. गहराई की एक गोल कांकरीट की बनी झील में गिराया जाता है । कार्बनिक अशुद्धियाँ तेज गति से झील के नीचे बैठ जाती हैं और ऊपर का शुद्ध जल फिल्टर से गुज़ारा जाता है । फिल्टर से पानी में तैरते अत्यन्त बारीक कण तक नहीं छनते हैं और साफ पानी फिल्टर वाटर के एक तालाब में गिरता है । फिल्टर वाटर से पानी आगे भेजने के लिए 270 घनमीटर प्रति घन्टे की गति से पानी फेंकने वाले 4 फिल्टर वाटर पम्प लगे हैं । इस तालाब से निकली धाराओं का विवरण निम्नांकित है :

पहली धारा विद्युत गृह की छत पर रखे 50 घनमीटर क्षमता के पीने के पानी के टैंक में जाती है । दूसरी जलधारा साफेनिंग वाटर प्लान्ट में भेजी जाती है । इस प्लान्ट में पानी में घुले कैलशियम तथा मैग्नेशियम लवण के कैलशियम तथा मैग्नेशियम आयनों को सोडियम, आयन से विस्थापित कर दिया जाता है । सोडियम के लवण ज्यादा तापमान पर भी पानी में घुले रहते हैं और पाइप लाइन की सतह पर नहीं जमते तथा शुद्ध जल का मार्ग अवरुद्ध नहीं करते । साफेनिंग वाटर प्लांट से निकले जल को कूलिंग टावर में भेजा जाता है । कूलिंग टावर से ठंडा हुआ पानी विद्युत गृह की छत पर रखे बियरिंग कूलिंग वाटर टैंक में भेजा जाता है । इस प्रयोजन के लिए 1150 घनमीटर प्रति घन्टे की क्षमता से पानी फेंकने वाले 5 बियरिंग कूलिंग वाटर पम्प लगाये गये हैं । तीसरी जलधारा डी मिनरलाइजेशन प्लान्ट में जाती है । ब्वायलर के

लिए पानी इसी प्लान्ट में तैयार किया जाता है । इस प्लान्ट में पानी में घुले सभी मिनरल निकाल दिये जाते हैं ताकि ब्वायलर ट्यूब का करोजन और टरबाइन ब्लेड का इरोजन न हो सके । डी-मिनिरलाइजेशन प्लान्ट के मुख्य यंत्र निम्नांकित हैं :

(क) एक्टिवेटेड कार्बन फिल्टर :

इसमें घुसते ही कोयले द्वारा पानी में घुली क्लोरीन गैस सोख ली जाती है । यहाँ से पानी कैटायन एक्सचेंज बेड में पहुँचता है ।

(ख) कैटायनएक्सचेंज बेड :

यह बेड सिंथेटिक एसिड रेजिन से भरा रहता है । सिंथेटिक रेजिन (R-H) पानी में घुले कैलशियम, मैगनेशियम तथा सोडियम लवण के कैटायनों को पानी से अलग कर देता है और R-Ca, R-Mg तथा R-Na यौगिक बना देता है, जो कैटायन बेड में ही रह जाते हैं । इसके साथ-साथ बने H_2CO_3,HCl तथा H_2SO_4 एनायन बेड की ओर ले जाये जाते हैं । R-Ca, R-Mg तथा R-Na को पुन: सिन्थेटिक एसिड रेजिन, R-H में परिवर्तित करने के लिए कैटायन बेड का रीजेनेरेशन करते हैं जिसके दौरान HCl मिलाकर पुन: R-H प्राप्त किया जाता है । कैलशियम मैगनेशियम तथा सोडियम के क्लोराइड पानी के साथ बाहर निकल जाते हैं और कैटायन बेड में R-H रह जाता है ।

(ग) डीगैसर :

कैटायन बेड से निकला एसिड H_2CO_3 पानी और CO_2 गैस में स्वत: परिवर्तित हो जाता है । अब CO_2 गैस, HCl तथा H_2SO_4 के मिश्रण को डी-कार्बोनाइजिंग टावर में से गुजारते हैं जहाँ ब्लोअर द्वारा CO_2 गैस निकाल दी जाती है और बाकी बचा HCl तथा H_2SO_4 को एनायन एक्सचेंज बेड में लाया जाता है ।

(घ) ऐनायन एक्सचेंज बेड :

ऐनायन एक्सचेंज बेड बेसिक रेजिन R-OH से भरा होता है जो पानी में घुले एसिड तथा सिलिका को पानी से अलग कर देता है ।

ऐनायन एक्सचेंज बेड से निकला पानी मिश्रित बेड की ओर भेजा जाता है । बेसिक एनायन रेजिन को पुन: प्राप्त करने के लिए कास्टिक सोडा के घोल का प्रयोग किया जाता है । इसमें बने NaCl तथा Na_2SO_4 आदि लवण पानी के साथ घुलकर बाहर निकल आते हैं और केवल बेसिक ऐनायन रेजिन रह जाता है ।

(च) मिश्रित बेड :

ऐनायन एक्सचेंज बेड से निकला पानी जब मिक्सड बेड में पहुँचता है तो एसिड सिंथेटिक रेजिन तथा बेसिक रेजिन, दोनों के सम्पर्क में आता है ताकि पानी में बाकी बचे खनिज तथा सिलिका निकल जायें और पूर्णरूपेण शुद्ध जल की यात्रा प्रारम्भ हो सके । डी-मिनरलाइजेशन प्लांट 3 x 60 घनमीटर प्रति घंटे की गति से जल शोधित करके यूनिट कन्डेन्सेट टैंक में भेजता रहता है ।

यूनिट कन्डेन्सेट स्टोरेज टैंक :

110 मेगावाट क्षमता की चारों मशीनों के लिए 4 यूनिट कन्डेन्सेट स्टोरेज टैंक लगाये गये हैं । प्रत्येक टैंक में 500 घनमीटर डी-मिनरलाइज्ड पानी एकत्र किया जा सकता है । यहाँ से निकल कर पानी कन्डेन्सर के निचले भाग, हाटवेल में ले जाने के लिए प्रत्येक टैंक के साथ 2 कन्डेन्सेट ट्रान्सफर पम्प लगाये गये हैं जिनमें से प्रत्येक की क्षमता 6.5 घनमीटर प्रतिघंटा है । ये पम्प हाटवेल में आवश्यकतानुसार पानी पहुँचाते रहते हैं ।

हाटवेल से डीएअरेटर तक : हाटवेल से लगभग 40° से. तापमान का पानी निकलता है । इस पानी को 42 मी. ऊँचाई पर रखे डीएअरेटर में चढ़ाया जाता है । डीएअरेटर 15.9 मी. व्यास का सिलिंडर के आकार का टैंक है । इसमें पानी चढ़ाने के लिए 3 यूनिट कन्डेन्सेट पम्प लगे हैं जिनमें प्रत्येक की जल चढ़ाने की क्षमता 160 घनमीटर प्रति घंटा है । डीएअरेटर की ओर जाते समय पानी को उत्तरोत्तर गर्म करते जाते

हैं । हाटवेल से 40° से. तापमान का निकला पानी डी-एअरेटर की ओर जाते समय भाप द्वारा उत्तरोत्तर गर्म करने के लिए इसे स्टीम जेट इंजेक्टर, एल पी हीटर 1A, 1B, 2A, 2B, (चित्र देखिए) चिमनी स्टीम कन्डेन्सर, ग्लैंड स्टीम कन्डेन्सर, एल पी हीटर नं. 3, एल पी हीटर नं. 4 तथा एल पी हीटर नं. 5 से होकर गुज़ारा जाता है । डीएअरेटर पर पहुँचकर पानी ऊपर से गिरता है और नीचे से भाप फेंकते हैं जिससे पानी में घुली आक्सीजन भाप के साथ बाहर निकल आती है और हवा से मुक्त जल डीएअरेटर में एकत्रित होता रहता है ।

डीएअरेटर से ब्वायलर तक :

इस प्रक्रिया में पानी पहले 42 मी. पर रखे डीएअरेटर से नीचे उतरता है और 545 घनमीटर की गति से ऊपर ब्वायलर की ओर पानी चढ़ाने वाले ब्वायलर फीड पम्प से 45 मी. ऊँचाई पर रखे गये ब्वायलर ड्रम पर पहुँचता है । प्रत्येक मशीन के साथ 2 ब्वायलर फीड पम्प का प्रावधान है । ब्वायलर फीड पम्प तक लाने से पहले ही पानी में हाइड्रेजीन मिला दिया जाता है ताकि पानी में घुली आक्सीजन पूरी तरह खत्म हो जाय तथा पानी का एसिडिक प्रभाव न्यूनतम कर दिया जाये । 45 मी. की ऊँचाई पर रखे ब्वायलर की ओर जाते समय जलधारा एच पी हीटर नं. 1 तथा एच पी हीटर नं. 2 से गुज़रती है । अत्यधिक तापमान की भाप के सम्पर्क में आने के कारण जल का तापमान 240° से. हो जाता है । तदोपरान्त इसे फ्लू गैस के ताप से गर्म करने के लिए एकोनोमाइजर में से गुज़ारा जाता है । एकोनोमाइजर से गर्म पानी ब्वायलर ड्रम में पहुँचता है । ब्वायलर में फासफेट की डोजिंग करते रहते हैं जिससे कि कैलशियम तथा मैगनेशियम के क्लोराइड, सलफेट वगैरह फासफेट से रासायनिक अभिक्रिया करके सी.बी.डी. वाल्व से बाहर निकाले जा सकें । ब्वायलर ड्रम में बचा हाइड्रेजीन डीसोशियेट होकर पानी, अमोनिया तथा नाइट्रोजन बन जाता है जो भाप के साथ निकल जाता है ।

ब्वायलर में पहुँचा पानी ट्यूब से होकर भट्टी में पहुँचता है । भट्टी के सम्पर्क में आते ही जलधारा भाप के रूप में परिवर्तित हो जाती है और ब्वायलर ड्रम के ऊपर इकट्ठी होती जाती है । इसी भाप को सुपर हीट करके 540° से. तापमान तथा 139 कि.ग्रा. प्रतिवर्ग सें.मी. दाब पर 380 टन प्रतिघंटे की गति से टरबाइन की ओर भेजा जाता है जिससे टरबाइन 3000 चक्र प्रति मिनिट की गति से घूमने लगती हैं । टरबाइन के घूमते ही उसके साथ जुड़ा 110 मेगावाट क्षमता का जेनेरेटर घूमता है और विद्युत उत्पादन प्रारम्भ हो जाता है । 11,000 वोल्ट की विद्युत धारा जैसे ही बाहर स्विचयार्ड में लगे 125 MVA ट्रांसफार्मर से गुजरती है, 2,20,000 वोल्ट की विद्युत धारा में परिवर्तित हो जाती है और ग्रिड में प्रवाहित होने लगती है ।

* * *

पृष्ठ - 27 का शेष

३. यदि रक्त लेने की आवश्यकता पड़े, तो जाने पहिचाने सम्बधियों का ही रक्त लें,

४. नशे के आदी व्यक्ति या तो नशा छोड़ दें, या एक ही सुई और पिचकारी का प्रयोग हर बार उबालकर ही करें,

५. विदेश यात्रा पर जानेवाले वहाँ अनजान व्यक्तियों से यौन संम्पर्क न करें,

६. विदेश में रहकर इलाज करवाने वाले व्यक्तियों को यदि रक्त की आवश्यकता पड़े, तो वे ऐसा रक्त लें जिसके साथ एड्स विषाणु मुक्त होने का प्रमाण-पत्र हो ।

* * *

भूत का रहस्य

मेघराज मित्र तथा साथी
दि राश्नलिस्ट सोसायटी पंजाब (रजि.),
गुरु नानक स्ट्रीट, बरनाला (पंजाब)

अप्रैल 1986 के मध्य के करीब पंजाबी शहर समराला के गांव मादपुर का जगदीप तर्कशील सभा के पास आया और घर में हो रहे उपद्रव का ब्योरा देने लगा। भूत-प्रेतों में उसका पूर्ण विश्वास था। ऐसा व्यक्ति घर के किसी भी सदस्य पर शंका नहीं कर सकता। उसने बताया कि कोई बाहरी हवा उसके घर में प्रवेश करके उसके घर का बहुत-सा नुकसान कर देती है। उसके घर में पेटियों, संदूकों, दीवारों तथा चारपाईयों पर पड़े कपड़े काट दिये जाते हैं। यहां तक कि बुनी जा रही दरी भी नहीं बची। नये सिले और अनसिले सूट भी नहीं बचे, वह भी काट डाले गये हैं। कई बार रात को अचानक दरवाजे भी खटखटाये जाते हैं। ढेले भी गिरते हैं। वह भयभीत तथा घबराया हुआ लग रहा था।

सभी सदस्यों ने उसके पास पहुंचने का समय निश्चित कर लिया। उसे यह भी कहा गया कि वह अब घर में पूरा ख्याल रखे कि कहीं घर में ही कोई व्यक्ति ऐसी कार्यवाई न कर रहा हो, और यह भी ख्याल रखे कि सभा सदस्य के पहुंचने वाले दिन भी घर का कोई व्यक्ति बाहर न जाये।

मैं और साथी मेघ राज मित्र निश्चित दिन, 19-7-86 को मादपुर पहुंच गये। जगदीप से पूंछा गया कि अब कोई घटना हुई और क्या उसने पूर्ण ध्यान भी दिया ? उसने बताया कि वह पूर्ण सचेत था, मगर फिर भी दीवारों पर पड़े कपड़े काट डाले गये। वह इसी बात पर अडिग था कि कोई व्यक्ति नहीं बल्कि कोई देवी शक्ति ही ऐसी कार्यवाई कर रही है। पूंछने पर उसने यह भी बताया कि वह कई तांत्रिकों के पास भी गया था और उनका कहना है कि काली मुर्गी के खून का घर में टोना किया गया है। जौ और गेहूं के भुने हुए दाने भी साथ बिखेरे हुए हैं। कई ओझों ने यह भी कहा है कि मकाला गांव के तांत्रिक ने इस भूत को काबू करने का यत्न भी किया मगर सफल न हो पाया। गांव के फकीर के ताबीज ने भी कोई प्रभाव नहीं डाला।

जगदीप और हरजीत, दोनों भाई इकट्ठे रहते थे। दोनों के बच्चे भी काफी बड़े थे। दोनों की पत्नियां सगी बहनें थी। जगदीप चालीस वर्ष का था और हरजीत करीब ४७ वर्ष का था। हरजीत की दो लड़कियां थीं, एक मिडल तथा एक नौंवी कक्षा में थी जबकि लड़का आठवीं कक्षा का छात्र था। जगदीप की बड़ी लड़की नौंवी कक्षा में, लड़का आठवीं में, तथा छोटी लड़की छठी कक्षा की छात्रा थी। जगदीप की बुजुर्ग मां भी जीवित थी।

घर के सभी सदस्यों से अकेले में पूंछ-पड़ताल की गयी। प्रत्येक सदस्य को निर्देश था कि वह सच बोलेगा तो ही इलाज संभव हो पायेगा। घर में एक ही कैंची थी जो प्राय: जगदीप की पत्नी की सिलाई मशीन में रखी होती थी। जगदीप की पत्नी कपड़े सीने का काम करती थी। घर में एक लड़की के सिर दर्द रहने की भी जांच की गयी। एक बार तो सभी सदस्य आश्चर्य में पड़ गये थे, चूंकि घर में कोई भी ऐसा मरीज नहीं दिख रहा था।

घर में भिन्न-भिन्न सदस्यों से मिले ब्योरे बार-बार जांच किये गये तो अंत में भूत काबू में आ गया। जब पड़ताल की गयी तो पता चला कि घर में अगर कोई ज्यादा नुकसान करता है तो वह हरजीत ही है। वह शराब पीकर कई बार गन्दी गालियां भी बकता है। खुद ही कहने लगता है कि मुझे पकड़ है। इतना ही नहीं, उसका गांव की किसी मक्कार औरत के साथ अवैध संबंधों का भी जिक्र आया। दरअसल बात यही थी कि घर में जवान लड़कियों के होते हुए उसे अपनी कामतृप्ति का कोई अवसर नहीं मिलता था, जिस के कारण वह किसी अन्य

औरत के पास जाने लगा । यह औरत इतनी चालाक थी कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाकर जादू-टोने करती रहती । हरजीत को अपने काबू में करके वह उसकी घरेलू हालत का लाभ उठाती । एक तो उसकी उकसाहट और दूसरी मानसिक दुर्बलता, उससे ऐसी कार्यवाई करवाती ।

कपड़े वह प्रायः शराबी हालत में ही काटता । कैंची उठाता और कांपते हाथों से छोटे-छोटे कट लगाता, जैसे किसी अनजान ने कटाई का काम किया हो । ऐसा करते वक्त वह अत्यंत चुस्ती से काम लेता कि उसे कोई देख भी न सके । कपड़ों को यह चूहों की भांति काटता । कभी कानर्स काबू आ गये तो कभी दरी, कभी अनसिला सूट । कैंची का कट सीधा जाने की बजाय दँतियां छोड़ता जाता । कपड़े काटने से पहले और बाद में वह घबरा जाता । कभी-कभार गर्मी से भीगा वह सिर घुमाने लगता । कई बार शराबी हालत में उसे घर के बाहर से भी उठा कर लाया गया ।

शारीरिक तौर पर वह काफी तगड़ा, मजबूत और सेहतमंद था । बड़ी उम्र का होने के कारण उस पर शक करना भी मुश्किल था और घर में उसकी पूंछताछ भी अच्छी थी । आर्थिक तौर पर भी परिवार अच्छा था ।

हरजीत को पूंछताछ के लिए सब से अंत में बुलाया गया । वह जैसे ही कुर्सी पर आकर बैठा तो जमुहाई लेने लगा । जब जमुहाईयों का उससे कारण पूछा गया तो उसने झिड़कते हुए बताया, "मैं सो गया था, और उठकर आया हूं ।" फिर तुरंत कहा कि मैंने दरअसल डाक्टर की दवा ली है । उसका बदन पसीने से भीगा हुआ था । जब उसके अवैध संबंधों की बात शुरू हुई तो वह बिल्कुल ही घबरा गया । फिर कहने लगा कि एक वर्ष पहले उसने मुझे दूध का एक गिलास पिलाया था।उसके पश्चात मेरा मुझ पर नियंत्रण नहीं रह पाया । मगर ऐसा उसकी कामुक कमजोरी के कारण था । इस कमजोरी का लाभ उठाते हुये वह औरत उससे ऐसे काम करवाती थी ।

अंत में जब उस पर प्रश्नों की बौछार होने लगी तो वह बुरी तरह घबरा गया । हमने उसके सभी भेद गुप्त रखने का विश्वास दिलाया तो उसने सारा ब्योरा स्पष्ट शब्दों में बता दिया । उसके बाजू पर बांधा हुआ गांव के फकीर का ताबीज हम अपने साथ ले आये और उसे आगे से ऐसा न करने को भी कहा ।

अन्त में हमने परिवार के सदस्यों को सम्बोधन करना शुरू किया कि भूत-प्रेत नाम की कोई वस्तु नहीं होती है । शारीरिक शक्ति के बगैर कोई वस्तु चल नहीं सकती । राख बन चुके मनुष्य आत्माओं के रूप में कभी वापिस नहीं आ सकते और न ही कोई ऐसी कार्यवाई कर सकते हैं । अगर ऐसा कोई तांत्रिक हो जो भूत-प्रेत दिखा सके या बिना हाथ लगाये किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदल सके, तो तर्कशील सभा, पंजाब, उसे लाख रूपये (1,00,000/-) का इनाम देगी । लोगों को देवी शक्तियों के जाल से निकलने की प्रेरणा दी । परिवार को वैज्ञानिक और तर्कवादी राह पर चलने के लिए भी कहा ।

इस घटना से सिद्ध होता है कि भूत, प्रेत, जिन, ऊपरी पकड़ आदि सब कमजोर लोगों के दृष्टि भ्रम हैं । अनेक घरों में बच्चों की परवरिश शुरू से ही कुछ ऐसे ढंग से की जाती है कि बचपन से ही उनके मन में भय और भ्रम उतर जाते हैं । कई मानसिक गुत्थियाँ सारी उम्र उनके मन में सुलझ नहीं पाती हैं ।

* * *

दूरदर्शन

आज सारा विश्व महान वैज्ञानिक जे.एल. वेयर्ड का उपकृत है। उनके द्वारा किये गये दूरदर्शन के आविष्कार ने क्रांतिकारी प्रगति की है। आज हम घर बैठे संसार भर की घटनाएं आदि देख व सुन सकते हैं। जहाँ यह मनोरंजन का तकनीकी साधन है, वहाँ यह आधुनिक शिक्षा के लिए भी वरदान है। इसके श्वेत-श्याम पर्दे की कार्यविधि, सिद्धांत व उपयोग की जानकारी निम्न प्रकार है :

(i) **प्रेषी :** अगर किसी फोटो को किसी यंत्र, जैसे आवर्धक लेंस से देखें, तो पता चलता है, यह लाखों काले और सफेद बिन्दुओं से बना है। जिस फोटो को टेलिविजन द्वारा दूर भेजना होता है, उस फोटो को इन्हीं छोटी-छोटी गोलिकाओं में बांट लिया जाता है। यह घटना स्केनिंग कहलाती है। इन विन्दुओं व गोलिकाओं केचित्र ग्राही (रिसीवर) के पर्दे पर बहुत जल्दी-जल्दी बनते हैं। चूंकि एक चित्र हमारी आँख के पर्दे पर 1/50 सेकण्ड तक रहता है, अत: ये चित्र दृष्टि निर्बंधता के कारण एक साथ दिखायी देते हैं (चित्र देखिए)।

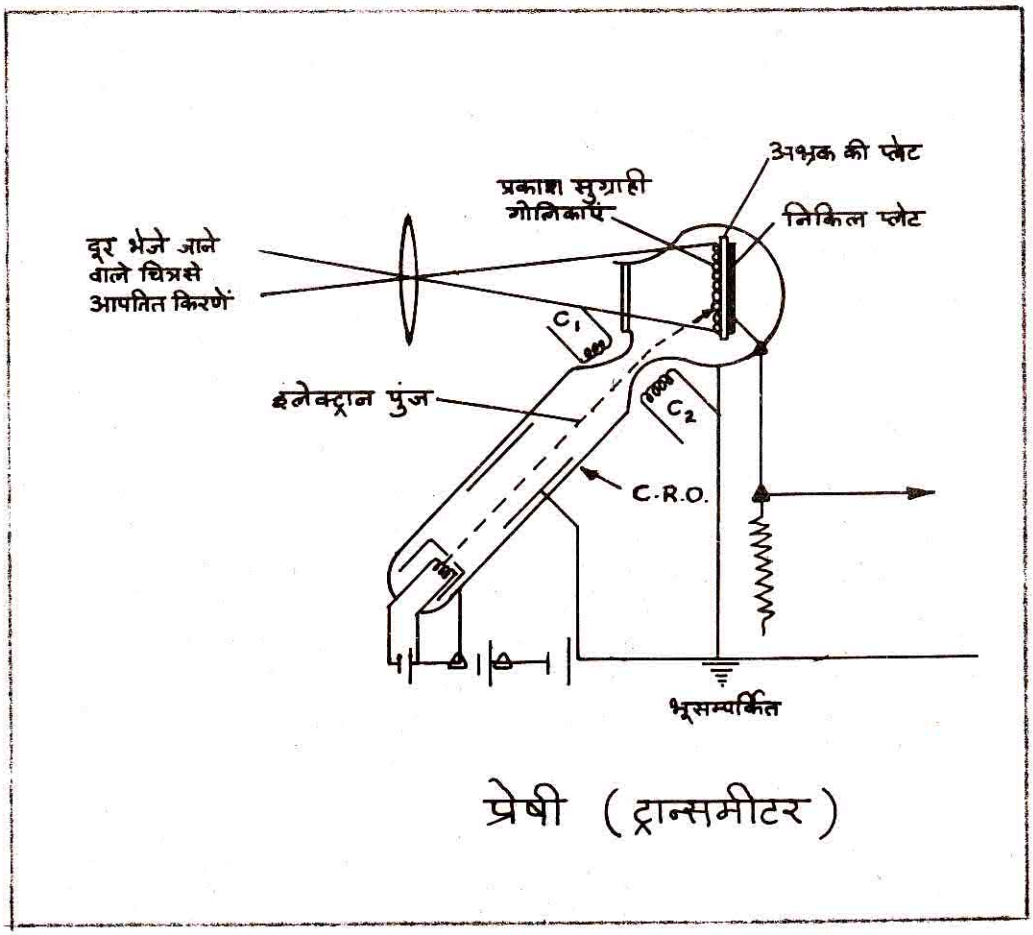

प्रेषी (ट्रान्समीटर)

ये गोलिकाएं एक दूसरे से स्वतंत्र तथा प्रकाश सुग्राही होती हैं। अभ्रक की प्लेट के पीछे जिस पर ये नन्ही-नन्हीं गोलिकाएं जमी होती हैं, निकिल की प्लेट लगी होती है, जो सिगनल प्लेट के नाम से जानी जाती है। प्रत्येक गोलिका निकिल प्लेट के साथ मिलकर एक छोटा संधारित्र बनाती है, जिस के अन्दर अभ्रक कुचालक पदार्थ भरा रहता है। जिस वस्तु या व्यक्ति के चित्र को दूर भेजना होता है, उसके प्रतिबिंब को एक लैंस द्वारा अभ्रक की प्लेट (इन नन्हीं गोलिकाओं) पर डाला जाता है। प्लेट पर स्थित गोलिकाएं प्रकाशी - इलेक्ट्रान उत्सर्जित करके धनावेशित हो जाती हैं। जिस गोलिका पर जितनी अधिक तीव्रता का प्रकाश पड़ता है, वह उतनी ही अधिक धनावेशित हो जाती है। इससे प्रेरण द्वारा निकिल प्लेट ऋणावेशित हो जाती है। इस प्रकार, प्लेट पर वस्तु का वैद्युत प्रतिबिंब बन जाता है।

प्लेट पर गोलिकाओं को लगभग 400 पंक्तियों में व्यवस्थित किया होता है। इस प्लेट पर एक इलेक्ट्रॉन पुंज कैथोड किरण दोलनदर्शी (C.R.O) द्वारा एक कोने से दूसरे कोने तक घुमाया जाता है। इलेक्ट्रॉन पुंज सभी क्षैतिज दिशाओं (पंक्तियों) पर पहुँच जाता है। यह स्केनिंग क्रिया सम्पूर्ण प्लेट पर 1/30 सेकण्ड में पूर्ण हो जाती है। इलेक्ट्रॉन पुंज प्रत्येक गोलिका पर एक सेकण्ड में 30 बार गिरता है और उस पर 1 माईक्रो सेकण्ड तक रहकर आगे बढ़ जाता है। जिस गोलिका पर इलेक्ट्रॉन पुंज गिरता है उसका धनावेश नष्ट हो जाता है, इसलिए निकिल की प्लेट पर उसके सामने वाला आवेश स्वतंत्र होकर एक प्रवर्धक में चला जाता है। इस प्रकार, प्रत्येक गोलिका आपतित प्रकाश के अनुसार एक वैद्युत स्पंद उत्पन्न करती है। इन स्पंदों को प्रवर्धित करके, इन पर विद्युत चुम्बकीय तंरगों को अधिमिश्रित करके इन्हें दूर भेज दिया जाता है।

(ii) **ग्राही :** प्रेषी से आनेवाली विद्युत चुंबकीय तंरगें एरियल द्वारा ग्राही पर ग्रहण कर ली जाती हैं। ये अधिमिश्रित तंरगें कैथोड किरण दोलनदर्शी (C.R.O) के बेलनाकार ग्रिड को दी जाती हैं, जिस के तन्तु से निकलने वाले इलेक्ट्रोनों की संख्या में प्रेषी से आनेवाली वैद्युत स्पंदों के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है। स्विच द्वारा इलेक्ट्रॉनों की संख्या को कम या ज्यादा करके चित्रों को चमकीला या काला किया जाता है। कैथोड किरणों की तीव्रता में वस्तु के काले या सफेद भाग के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

कैथोड किरणें भी दोलनदर्शी के प्रतिदीप्तिशील पर्दे पर एक कोने से दूसरे कोने पर बार-बार घुमाई जाती हैं। ये गति टेलिविजन कैमरे में कैथोड किरण की गति के समकालिक की जाती है। इस प्रकार, पर्दे के अलग - अलग विन्दुओं पर वस्तु या व्यक्ति के काले-सफेद भागों के अनुरूप चमक उत्पन्न होती है। कैथोड किरणें भी एक सेकण्ड में 30 बार पर्दे पर घूमती हैं। दृष्टि निर्बन्धता के कारण पूरा चित्र एक साथ दिखायी पड़ता है।

यशपालसिंह ('सर्ल')
द्वारा, श्री नेमचन्द धीमान
टांडा, फैजाबाद - 247121 (सहारनपुर) उ.प्र.

* * *

टिप्पणी

रान्यूए (आर. एन. ए.) अणु का स्वविभाजन

शरीर में लगने वाली ईंटों में प्रोटीन, न्यूक्लिक एसिड, कार्बोहाइड्रेट, एन्जाईम एवं वसा का बहुत बड़ा हिस्सा होता है। जब 3.5 अरब वर्ष पूर्व जीवन की शुरूआत इस पृथ्वी पर हुई थी, तब क्या वह पहली ईंट प्रोटीन थी, या वह न्यूक्लिक एसिड थी ? यह प्रश्न उसी पहेली जैसा है जब यह पूँछा जाता है कि अण्डा पहले आया होगा या मुर्गी।

वर्ष 1982 में डॉ. थामस (कोलेरेडो यूनीवर्सिटी) एवं डॉ. एस. आल्टमन (येल युनीवर्सिटी) के दो वैज्ञानिकों की खोजों से यह पता लगा है कि रान्यूए (रायबो न्यूक्लिक एसिड) में स्वयं विभाजित होने की क्षमता पायी जाती है। यह पहली बार सिद्ध किया गया है कि रान्यूए बिना किसी प्रोटीन के सहारे विभाजित होने की क्षमता रखता है। इन दोनों वैज्ञानिकों को वर्ष 1989 में इस खोज पर नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

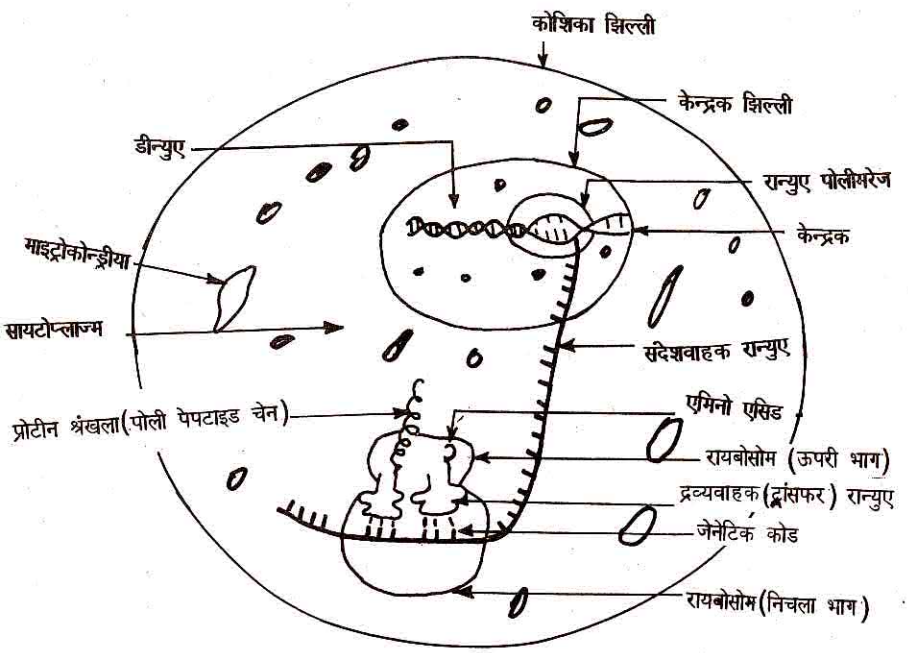

प्रोटीन श्रंखला का संश्लेषण

नोट: सभी आकार समानुपात में नहीं लिये गये हैं।

जीवन की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इसे जानने से पूर्व जीवन के मूलगूत लक्षण क्या हैं, यह समझ लिया जाए। जीवन की सभी रासायनिक क्रियाओं का संचालन डी-न्यूए (डी-आक्सी रायबोन्यूक्लिक एसिड) द्वारा होता है। यही वह अणु है जो संतति में वंशगत गुणों को पहुँचाता है। डीन्यूए के इस कार्य को संपादित करने के लिए तीन प्रकार के रान्यूए सहयोग प्रदान करते हैं; पहला, द्रव्यवाहक रान्यूए (ट्रांसफर आर. एन. ए.) जो एमिनो एसिड को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है; दूसरा, संदेशवाहक रान्यूए (मेसेन्जर आर. एन. ए.) जो डीन्यूए के द्वारा कोड के रूप में संदेश लेकर प्रोटीन संश्लेषण के कारखाने (रायबोसोम) तक ले जाता है; तीसरा, रायबोसोमीय रान्यूए जो रायबोसोम में ही अवयव के रूप में जुड़ा रहता है। ये सभी रान्यूए मिलकर प्रोटीन का संश्लेषण करते हैं (चित्र - 1)। कोशिका को कब कहां कौन से प्रोटीन की आवश्यकता होगी, इसका निर्णय डीन्यूए करता है एवं उसके निर्देशानुसार प्रोटीन का निर्माण किया जाता है।

डॉ. थामस एवं उनके सहयोगी जब रायबोसोम अणु का अध्ययन कर रहे थे, तब उन्होंने पाया कि डीन्यूए के द्वारा प्रतिलिपित रान्यूए के अकार्यशील बेस (नानसेन्स्) "इन्ट्रान" झटकर कर अलग हो जाते हैं। तब यह सोचा गया था कि शायद किसी एन्जाईम ने यह कार्य संपादित किया होगा, अतः वैज्ञानिकों ने इस प्रयोग को पुनः दोहराया। एक प्रयोग में पूर्व रायबोसोमीय रान्यूए कोशिका के केन्द्रक से लिया गया। इस रान्यूए में इन्ट्रान बेस मौजूद था। उन्हें यह जानकर पुनः आश्चर्य हुआ कि बिना एन्जाईम के भी यह इन्ट्रान श्रंखलाएं स्वयं अलग हो गयीं। इसके पूर्व, जब कभी इन्ट्रान श्रंखलाएं अलग होती थीं, तब हमेशा एन्जाईम का उपस्थित होना आवश्यक होता था। इसके बावजूद यह कार्य उसी गति से चलता रहा, जिस गति से एन्जाईम की उपस्थिति में होता था।

इसी कार्य की डॉ. आल्टमन एवं सहयोगियों ने प्रयोग करके पुष्टि कर दी। डॉ. आल्टमन् का प्रयोग स्वतंत्र रूप से चल रहा था। डॉ. थामस द्वारा किया हुआ कार्य, रान्यूए का स्वयं विभाजित होना, अभी अपूर्ण था। ये अणु केवल स्वयं पर कार्य करते थे। यह क्रिया केवल एक ही बार संपन्न हो सकती थी। डॉ. आल्टमन एवं उसके सहयोगी द्रव्यवाहक रान्यूए पर कार्य कर रहे थे। इस दल का कार्य रायबोन्युक्लियेज़ पी. (एक प्रकार का एन्जाईम) पर केन्द्रित था। यही वह एन्जाईम है जो रान्युए की इन्ट्रान श्रंखलाओं को उससे काटकर अलग कर देता है। डॉ. आल्टमन के सम्मुख प्रमुख प्रश्न यह था कि इन्ट्रान को अलग करने में प्रोटीन सहभागी है या रान्यूए। प्रथम तो यह उत्तर पाया गया कि दोनों ही सहभागी हैं, लेकिन दो-तीन वर्षों के अथक प्रयोगों द्वारा यह समझा गया कि एन्जाईम उत्प्रेरक का गुण स्वयं रान्यूए की एक श्रंखला में ही रहता है।

वैज्ञानिक गण इस प्रयोग से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जीवन की उत्पत्ति में लगने वाला प्रथम अणु निसंदेह रान्यूए ही रहा होगा। अब हमें आगे आने वाली खोजों से यह ज्ञात करना होगा कि रान्यूए से डीन्यूए में जीवन का पदार्पण कैसे हुआ होगा, क्योंकि केवल रान्यूए एक मौलिक जीवन का अणु नहीं हो सकता है। वैसे, वायरस में भी मौलिक अणु रान्यूए (अधिकांश में) रहता है, परन्तु इसे विभाजित होने के लिए मेज़बान कोशिका की आवश्यकता होती है, किन्तु डीन्यूए को मेज़बान कोशिका की आवश्यकता नहीं होती है, अतः मौलिक जीवन डीन्यूए पर आधारित ही है।

ओ. पी. खण्डेलवाल
67, शिक्षक नगर,
इन्दौर - 452 005.

सौरमण्डल के अज्ञात ग्रह

अभी तक हम सौरमण्डल के 9 ग्रहों से ही परिचित हैं, किंतु नयी खोजों के अनुसार वैज्ञानिकों ने अब इस बात पर भी बहस आरम्भ की है कि सौरमण्डल में दसवाँ एवं ग्यारहवाँ ग्रह भी है । इनमें से दसवें ग्रह के अस्तित्व पर कई वैज्ञानिक सहमत भी हैं ।

वर्तमान समय में चर्चित दसवें ग्रह की कल्पना कई दशकों से की जा रही है । वैज्ञानिकों को विश्वास है कि यह दसवाँ ग्रह सूर्य की कक्षा में प्लूटो (यम) ग्रह से भी बहुत दूर स्थित है, किन्तु अभी तक इस ग्रह को कोई भी वैज्ञानिक देख नहीं पाया है, यद्यपि इस ग्रह को देखने हेतु लगभग 50 वर्षों से अनेक वैज्ञानिक प्रयास कर रहे हैं । इसे देखने हेतु अति शक्तिशाली दूरबीनों का प्रयोग किया जा रहा है, फिर भी अभी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है ।

दसवें ग्रह की कल्पना का मुख्य कारण यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों की कक्षा का भिन्न होना है । ये दोनों ग्रह सौरमण्डल के अन्य ग्रहों की कक्षाओं से भिन्न कक्षा में हैं, इसीलिए वैज्ञानिकों ने यह कल्पना की है कि यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों की कक्षा की तरह की कक्षा वाले अन्य ग्रह होने चाहिए ।

''नासा'' के वैज्ञानिक, जान एण्डरसन का विचार है कि दसवाँ ग्रह सौरमण्डल में विद्यमान तो है, किन्तु यह ग्रह अन्य ग्रहों की तुलना में अत्यधिक दूर है । एण्डरसन ने अपना यह विचार पायनियर-10 एवं पायनियर-11 अंतरिक्ष यानों की उड़ानों से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर व्यक्त किया है । ये दोनों यान क्रमशः वर्ष 1972 एवं 1973 में सौरमण्डल के अत्यधिक दूरी के क्षेत्रों के रहस्यों का पता लगाने हेतु भेजे गये थे ।

19वीं शताब्दी में वैज्ञानिकों ने यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों की कक्षाओं में किसी अज्ञात कारण से उत्पन्न परिवर्तन देखा था । वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला था कि इन दोनों ग्रहों की कक्षाओं में परिवर्तन का मुख्य कारण किसी अज्ञात ग्रह का गुरूत्वाकर्षण हो सकता है, किन्तु वैज्ञानिकों के दूसरे समूह ने कहा कि यदि कोई अज्ञात ग्रह यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों की कक्षाओं को प्रभावित कर रहा है, तो इसका प्रभाव पायनियर-10 एवं पायनियर-11 यानों पर भी पड़ना चाहिए । इन यानों पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, अतः यह अज्ञात ग्रह का आकर्षण नहीं हो सकता । इसलिए, इस बारे में वैज्ञानिकों में अभी मतभेद ही बना हुआ है ।

इस विवाद के बाद इस सम्बन्ध में गहन अध्ययन किया जाने लगा और जान एण्डरसन एवं वाशिंग्टन स्थित नौ-सेना वेधशाला के खगोल वैज्ञानिक, केनेथ सीडलमैन ने अपने अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि 19वीं सदी में यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों की कक्षा में हुए परिवर्तन सही थे और ये परिवर्तन किसी अज्ञात ग्रह के आकर्षण के फलस्वरूप ही हुए थे । इन दोनों ने गणना के आधार पर यह सिद्ध किया कि अति दूर स्थित पृथ्वी से पाँच गुना भारी कोई ग्रह लंबवत् एक अंडाकार कक्षा में चक्कर काट रहा है । इस अज्ञात ग्रह की कक्षा सौरमण्डल के पूर्व ज्ञात ग्रहों की कक्षाओं से विपरीत लम्बवत् है और सम्भवतः इसी कारण से 19वीं सदी में यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों की कक्षाओं में हुए परिवर्तन का पता वैज्ञानिक लगा पाये । इन वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि उसके बाद, यह ग्रह धीरे-धीरे अपनी कक्षा में दूर होता गया तथा अब इतना अधिक दूर हो चुका है कि इसके गुरूत्व का प्रभाव यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों पर नहीं पड़ सकता और यही कारण है कि अब यह पायोनियर-10 एवं पायनियर-11 अंतरिक्षयानों को भी प्रभावित नहीं कर सका है । इस सिद्धान्त को अन्ततः अन्य वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं ।

वैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि यह अज्ञात दसवाँ ग्रह यम से भी अधिक उत्केन्द्रक कक्षा में स्थित होगा, क्योंकि अब तक ज्ञात ग्रहों में यम ही अधिक दूरी पर चक्कर काटता है तथा यह सूर्य के अन्य 8 ग्रहों की कक्षाओं के धरातल से नीचे भी

। वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि वह ग्रह जिस क्षा में चक्कर लगायेगा, वह कक्षा इतनी बड़ी होगी वह 700 से 1000 पार्थिव वर्षों में केवल एक र ही सूर्य का चक्कर लगा पायेगा। यह भी ध्यातव्य कि यूरेनस एवं नेप्च्यून की खोज भी सम्भवत: इसी रण हो पायी थी कि अन्य ग्रहों की कक्षाओं में पन्न बाधाओं ने इन दोनों ग्रहों के छिपने के स्थान स्पष्ट कर दिया था, जैसा कि अज्ञात ग्रह के मले में हुआ है।

जान अण्डरसन का यह भी कहना है कि र्ष 1910 के पश्चात बाह्य ग्रहों की कक्षाओं में ई स्पष्ट परिवर्तन नहीं दिखायी दिया है, जबकि ानिकों को यह विश्वास था कि बाह्य ग्रहों की क्षाओं में लगातार विचलन होता रहेगा।

इसमें सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस ग्रह खोज के लिए देखा कहाँ जाए, क्योंकि अभी भी निश्चित नहीं हो सका है कि यह किस ग्रह से थवा सूर्य से किस दिशा में स्थित होगा। इसके थ ही यह भी एक समस्या है कि इस ग्रह की कक्षा नी दूर होगी कि यह एक अति धुँधले तारे की तरह खायी देगा और इसके भ्रमण की गति भी इतनी नी होगी कि इसका अनुमान लगाना बहुत ही कठिन ा। सम्भवत:, इन्हीं कठिनाइयों के कारण अभी इस ग्रह को देख पाना सम्भव नहीं हो ा है। वैज्ञानिक अब इस ग्रह को देखने हेतु वर्ष 26 की प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्योंकि उन के अनुसार 2026 तक यह ग्रह पुन: यूरेनस एवं नेप्च्यून ग्रहों कक्षाओं में परिवर्तन ला सकता है।

ग्यारहवाँ ग्रह

अभी तक वैज्ञानिक दसवें ग्रह को देखने में लता प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु कुछ वैज्ञानिक रहवें ग्रह की भी कल्पना करने लगे हैं। यह कल्पना भारतीय वैज्ञानिक, डॉ. जे. जे. रावल ने की उन्होंने यह दावा किया है कि वे दसवें ही नहीं, रहवें ग्रह का भी पता लगा चुके हैं। इन के अनुसार, सौरमण्डल का दसवाँ ग्रह सूर्य से 780 करोड़ किलोमीटर दूर है, जबकि ग्यारहवें ग्रह की दूरी सूर्य से 1500 करोड़ किलोमीटर है।

डा. रावल का यह भी कहना है कि अमेरिकी वैज्ञानिक जिसे दसवाँ ग्रह कह रहे हैं, वह उनकी राय में ग्यारहवाँ ग्रह है एवं उसके तथा यम ग्रह के मध्य में एक और ग्रह है, जो दसवाँ ग्रह है, किन्तु जब तक ये ग्रह देखे नहीं जाते, तब तक यह एक कल्पना ही रहेगी।

गणेशकुमार पाठक
प्राध्यापक, भूगोल विभाग,
महाविद्यालय दूबेछपरा, बलिया (उ.प्र.)-277 205.

प्रकृति की सुन्दर देन गुलाब

उद्यानों में लगाये जाने वाले पुष्पों में गुलाब का स्थान सर्वोपरि है। अपनी मनभावन सुगंध, रंगों की विविधता और मोहक रूप के कारण यह सभी प्रकार के फूलों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। गुलाब के फूलों में भीनी-भीनी खुशबू विद्यमान रहती है जो सहज ही सबका मन मोह लेती है। अपनी इन विशेषताओं के कारण गुलाब की खेती आदिकाल से की जाती रही है। विश्व के अनेक स्थानों पर पाये गये जीवांश अवशेषों के पुरातात्विक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि आज से तीन करोड़ वर्ष पूर्व भी गुलाब के पौधे धरती पर पाये जाते थे। आज विश्व भर में 25000 से भी अधिक गुलाब की किस्में विकसित की जा चुकी हैं, जिनमें से लगभग 6000 किस्में भारत में पायी जाती हैं।

उद्यानों में लगायी जाने वाली गुलाब की किस्मों की उत्पत्ति अनेक गुलाब की जातियों, जैसे रोजा दमाशीना, रोजा चाइनेन्सस, रोजा गेलिका, रोजा फीटिडा, रोजा जिगेन्सिया, रोजा मल्टीफ्लोरा, रोजा मासचेटा, रोजा विचुरेआना के संकरण से हुई है। भारत में भी लगभग 400 किस्मों का विकास किया गया है। इनमें से डा. होमी भाभा, डा. बी. पी.

पाल, जवाहर, बन्जारन, सुगन्धा, गंगा, प्रेमा, अर्जुन, रक्तगंधा किस्में महत्वपूर्ण हैं ।

गुलाब मुख्य रूप से शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का पौधा है । उपोष्ण कटिबंधीय भूभागों, जैसे गंगा के मैदानों में गुलाब के पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए सबसे अच्छा समय नवम्बर (अधिकतम तापमान 29^0 से., न्यूनतम तापमान 12^0 से.) से लेकर मार्च (अधिकतम तापमान 32^0 से., न्यूनतम तापमान 16^0 से.) तक का समय है । दिसम्बर के मध्य से पौधों में फूल खिलना आरम्भ हो जाते हैं जो मार्च तक खिलते रहते हैं । दिसम्बर में प्रथम बहार में आने वाले फूल 4 से 6 सप्ताह तक रहते हैं । इस समय पौधों में फूलों की संख्या कम होती है । फूलों की दूसरी बहार जनवरी के अन्तिम सप्ताह से आरंभ होती है जो फरबरी के अन्तिम सप्ताह तक चलती रहती है । ये फूल काफी सुन्दर व अच्छे आकार के होते हैं । मार्च-अप्रैल में अन्तिम बहार के आने वाले फूल अपेक्षाकृत आकार में छोटे हो जाते हैं क्योंकि मार्च-अप्रैल में तापमान बढ़ जाता है और इसका विपरीत प्रभाव पौधों पर पड़ता है ।

गुलाब की अनेक किस्में हैं । कुछ गुलाब गुच्छों में खिलते हैं, तो कुछ एक शाखा पर एक ही खिलना पसंद करते हैं । इन नाना प्रकार के गुलाबों को कई वर्गों में बांटा गया है प्रत्येक वर्ग में कई किस्में हैं । इन वर्गों व किस्मों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार किया गया है :

(क) **हाईब्रिड-टी :** इस वर्ग के गुलाब बहुत सुन्दर होते हैं । इसके पौधे लम्बे व फैलने वाले होते हैं तथा इनकी एक शाखा से एक फूल निकलता है । फूल बड़ा व खूबसूरत होता है । विभिन्न रंगों में हाइब्रिड-टी, गुलाबों की कुछ किस्में निम्न हैं -

1. लाल गुलाब : एवान, एना हार्कनेश, पापा मिलान्ड, भीम, मिरान्डी, मिस्टर लिंकन, रेड चीफ, रक्तगंधा ।
2. पीला गुलाब : अपोलो, गोल्ड डाट, गोल्ड मेडल फ्रेगरेन्ट गोल्ड, सनब्लेब्ट ।
3. गुलाबी : एप्रिसिएसन, क्राइटेरिअन, जेडिस आइफिल टावर, फर्स्ट प्राइज, मृणालिनी सेन्चुरीटू ।
4. सफेद गुलाब : डा. होमी भाभा, जवाहर, नवनीत, वरगो, जे. एफ. केनेडी, पोलर स्टार ।
5. नील लोहित गुलाब : ब्लूमून, ब्लू डायमन्ड, लेडी एक्स, लिलक टाइम, हेयर लूम ।
6. गहरा लाल गुलाब : ओकले होमा, कालिमा, बोन न्यू, क्रिमशन ग्लोरी, चार्लस मेलरिन, लाल बहादुर, ब्लेक लेडी ।
7. दुरंगे / बहुरंगी गुलाब : किस आफ फायर, ग्रेनेडा, डबल डिलाइट, पेराडाइज, पारथिनान ।
8. नारंगी व सिंदूरी गुलाब : कमान्ड परफारमेन्स, मान्टेजूमा, सुपरस्टार, समर होलीडे ।

(ख) **पालीएन्था :** इन गुलाबों में फूल गुच्छों में निकलते हैं तथा फूल छोटे होते हैं, जैसे ओरलिन रोज, शेटेलिन रोज, मेरीपोसा, मिसेज फिन्च, अन्जनी, प्रीती, स्वाती आदि मुख्य किस्में हैं ।

(ग) **फ्लोरीबन्डा :** ये गुलाब हाइब्रिड-टी व पोलीएन्था के मेल से निकाले गये हैं । यह हाइब्रिड-टी गुलाबों से अधिक संख्या में फूल देते हैं तथा पोलीएन्था से अच्छे आकार के फूल होते हैं व गुच्छों में फूलते हैं । विभिन्न रंगों में फ्लोरीबन्डा गुलाब की कुछ किस्में निम्न हैं :

1. लाल : इम्प्रेटर, यूरोपियाना, नारडिया, ट्रम्पेटर, सान्ता मेरिया ।
2. गुलाबी : अरुनिमा, प्रेमा, फ्रोलिक, सहाबहार ।
3. सफेद : अकीटो, आइसबर्ग, शबनम, समर स्नो ।
4. पीला : आरथरवेल, बेलोना, ब्राइट स्माइल, गोल्ड मेरी, सनफ्लेयर ।

5. नील लोहित : अफ्रीका स्टार, अजूर, नीलाम्बरी, शाकिंग ब्लू ।
6. नारंगी / सिंदूरी : अरेबियन नाइट, केब्रे, कुम कुम, डारिस नारमन, जेम्ब्रा, जोरिना ।
7. दुरंगे / बहुरंगी : बन्जारन, बरनाली, करिश्मा, चार्लेस्टन, रेड गोल्ड ।

(घ) **लघु गुलाब (मिनिएचर) :** इन गुलाबों को बेबी गुलाब या मिनि गुलाब भी कहते हैं । इनकी पत्तियां, कांटे, और फूल छोटे होते हैं । इस तरह के गुलाब गमलों में आसानी से उगाये जा सकते हैं -

1. लाल : ब्यूटी सिक्रेट, कोरालिन, रेड डेट ।
2. पीला : बेबी गोल्ड स्टार, केलगोल्ड. सनी मार्निंग, यलो डौल ।
3. सफेद : ग्रीन आइस, जेट ट्रेल, पुसकला ।
4. गुलाबी : क्रिक्रि, कडेल्स, जन्ना, विंडी सिटी ।
5. नील लोहित : ब्लूमिस्ट, लेवेन्डर लेस, मिस्टर ब्लूवर्ड, सिल्वर टिप्स ।
6. नारंगी / सिंदुरी : बेबी डार्लिंग, हुला गर्ल, आरेंज फायर, पेटिट फाली ।
7. दुरंगे / बहुरंगी : बेबी मस्करेड, जेनी विलियम्स, लिटिल सनसेट, ओबर दि रेनबो ।

(च) **लता गुलाब (क्लाइंबिंग रोजेज) :** कुछ गुलाबों की शाखाएं बेलों की भांति बढ़ती हैं । इस कारण इनको लता गुलाब कहा जाता है । जैसे काकटेल, प्रासपेरिटी, मारचल नील, मेडम ड्राईआउट ।

गुलाब के अनेक औषधिक एवं सुगंधिक (Medicinal and aromatic) उपयोग भी हैं । रोजा दमाशीना, रोजा अलबा के फूलों से इत्र, गुलाब जल, गुलकन्द, माला व गुलदस्ता आदि बनाये जाते हैं । भारत के इत्र उद्योग में गुलाब का तेल बहुत महत्वपूर्ण है । इस समय इत्र की कीमत लगभग एक लाख रूपये प्रति किलोग्राम है । एक हेक्टेअर क्षेत्रफल में गुलाब की खेती करने से लगभग रू. 50,000 तक की आमदनी हो सकती है ।

काशीराम एवं सुरेशचन्द्र शर्मा
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसन्धान संस्थान,
राणाप्रताप मार्ग, लखनऊ - 226 001.

हिप्नोपीडिया यानि सोते-सोते पढ़िए

स्वप्नों के संसार में हुई वैज्ञानिक खोजों ने सपनों की अनेक पेचीदगियों को सुलझा ही नहीं लिया है, बल्कि मनोवैज्ञानिक अब सपनों को मनुष्य के लिए उपयोगी बनाने की दिशा में भी प्रयत्नशील हैं । इसी क्रम में 'हिप्नोपीडिया' नाम की एक ऐसी नयी और अजीबोगरीब विधि खोज निकाली गयी है, जिसकी मदद से अब कोई व्यक्ति सपने में भी पढ़-लिख सकता है, या किसी नयी कला, भाषा, विषय अथवा क्षेत्र में पारंगत हो सकता है । आपको यह बात सुनने में आश्चर्यजनक लग सकती है, लेकिन इस क्षेत्र में हुई खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिप्नोपीडिया पद्धति की सहायता से मनुष्य किसी भी जानकारी को सामान्य अध्ययन को अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से ग्रहण करता है ।

रूस, अमेरिका और ब्रिटेन में सपनों में शिक्षा देने के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान चल रहे हैं, परन्तु चेकोस्लोवाकिया के एक रेडियो केन्द्र ने इस नयी पद्धति के माध्यम से श्रोताओं को सपने में अंग्रेजी की शिक्षा देने का अपना कार्यक्रम सफलता पूर्वक चला कर लोगों को चमत्कृत कर दिया । आखिर हिप्नोपीडिया कही जानेवाली यह पद्धति है क्या ?

चेकोस्लोवाकिया का रेडियो केन्द्र अपना पाठ्यक्रम रात को शुरू करता है, जिसमें श्रोता दो घण्टे तक अध्याय को ध्यानपूर्वक सुनते हैं । इसके बाद, मधुर संगीत लहरियाँ प्रसारित होने लगती हैं, जो लोरियों का काम करती हैं और शिक्षार्थी गहरी निद्रा में सो जाता है । इसके बाद, पाठ्यक्रम कई घंटे

तक बहुत धीमे स्वर में पढ़ाया जाता है । श्रोता को ऐसा आभास होता है, मानो वह स्वप्न में ही अध्ययन कर रहा हो । आधी रात को रेडियो पर अचानक ऐसा तीव्र स्वर प्रसारित होता है कि श्रोता हडबड़ा कर उठ बैठे । उसके बाद, पढ़ाये गये समूचे पाठ्यक्रम के सार को मात्र कुछ मिनटों में दोहरा दिया जाता है और कार्यक्रम समाप्त । लेकिन, सवेरे ही पुनः जोरदार आवाज करके रेडियो अलार्म घड़ी की भाँति जगा देता है और सारी रात नींद में चलाये गये पाठ्यक्रम का सारांश एक बार फिर सुना देता है । इस विधि से रात को सोते-सोते ही अंग्रेजी सीखने वाले श्रोता मात्र एक महीने में ही अंग्रेजी सीख गये, जबकि सामान्य पाठ्यक्रमों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इस भाषा को कम से कम एक वर्ष में सीखते हैं । इस प्रकार, नींद में पढ़ा जाने वाला कोई भी विषय कई गुना तीव्रता के साथ पढ़ा-समझा और ग्रहण किया जाता है, इस प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया है ।

हिप्नोपीडिया नाम से जानी जाने वाली इस विधि के संबंध में मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि सोते समय मनुष्य के मस्तिष्क का पाँचवाँ हिस्सा सक्रिय अवस्था में रहता है, जबकि शेष हिस्से आराम करते हैं । यही हिस्सा नींद में पढ़ाये गये पाठ्यक्रम को ग्रहण करता है । ऐसा नहीं है कि इस पद्धति से सिर्फ किताबी पढ़ाई ही की जा सकती है । अमेरिका व ब्रिटेन की कुछ अनुसंधान शालाएं तो अभिनय, नृत्य, संगीत, कला जैसे विषयों के साथ-साथ इन्जीनियरिंग व गणित जैसे जटिल विषय भी इस प्रयोग से पढ़ाये जाने की दिशा में सफलता पूर्वक प्रयोग कर रही हैं ।

आप स्वयं भी इस नयी खोज से लाभ उठा सकते हैं । आपने कई बार महसूस किया होगा कि जो कुछ दिन भर करते हैं या पढ़ते-लिखते हैं, आपका मस्तिष्क निद्रावस्था या अर्धचेतनावस्था में उसका विश्लेषण करता है और उन समस्त जानकारियों को क्रमबद्ध करके आपके मस्तिष्क में जमा कर देता है । हालाँकि इस पद्धति के कुछ बहुत बड़े दोष भी हैं । उदाहरण स्वरूप, इस पद्धति के अंतर्गत शिक्षा देने वाला प्रशिक्षक सोते हुए शिक्षा ग्रहण करते विद्यार्थी के अवचेतन मन में अनुचित बातें भी भर सकता है, जैसे मैं तुम्हारा मालिक हूँ, तुम मेरे दास हो, या मैं जो भी आदेश दिया करूँ, तुम उसका पालन करोगे । ऐसे में बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो सकती है और इस तरह की धोखाधड़ी करके वह व्यक्ति शिक्षार्थी को कोई भी उचित-अनुचित कार्य करने के लिए बाध्य कर सकता है । विद्यार्थी भी अवचेतन मन में जम गयी उन बातों का पालन करते हुए एक सम्मोहित व्यक्ति की भाँति व्यवहार करेगा ।

बहरहाल, हिप्नोपीडिया पद्धति पर बड़े जोर-शोर से खोजें चल रही हैं और शायद वह दिन दूर नहीं, जब मनुष्य सोते समय ही शिक्षा ग्रहण किया करेगा, और अपने जीवन के उस लंबे भाग का भी सदुपयोग कर सकेगा जिसे वह सोने में ही गवाँ देता है ।

राजेश कुमार सिंह
ग्राम - सेवरकुण्ड, पोस्ट - चकलाल चन्द,
जिला - आजमगढ़ (उ.प्र.)

जैव-नियंत्रण

मनुष्य व पर्यावरण पर कीटनाशियों के विषैले प्रभाव एवं उसके फलस्वरूप बढ़ते प्रदूषण के कारण वैज्ञानिकों का ध्यान अब फसल को हानि पहुँचाने वाले जीवों को अन्य जीवों द्वारा नष्ट करने (जैव-नियंत्रण) की ओर गया है । वैसे मनुष्य को इसका ज्ञान बहुत समय से ही था, लगभग 200 वर्ष पहले मारिशस में टिड्डियों का नाश करने के लिए भारतीय मैना को ले जाया गया था, किंतु व्यावसायिक स्तर पर जैव-नियंत्रण का प्रयोग 17 वीं सदी के अंत में अमेरिका में नींबू के बागानों के कीड़े, मखमली बग पर आस्ट्रेलिया से लायी गयी लेडी वर्ड बीटल द्वारा किया गया था । उसके बाद, कई फसलों के हानिकारक कीड़ों का नाश जैव-नियंत्रण द्वारा किया

ाने लगा । कीटनाशियों के प्रभावों, गुण तथा सरल प्रयोग विधि के कारण इनका प्रचलन अत्यधिक होने गा । आज बिना कीटनाशियों के उपयोग के अच्छी सल लेना लगभग असंभव ही समझा जाने लगा है, न्तु इनके उपयोग से मानव स्वास्थ्य को होने वाली नि एवं पर्यावरण में असंतुलन के प्रति जागरूकता ाने के कारण वैज्ञानिक अब फिर से कीटनाशक ायनों का विकल्प 'जैव-नियंत्रण' के रूप में देख हैं । ऐसे जीव, कीड़े, जीवाणु या फफूँद आदि जो सल के लिए हानिकारण जीवों को नष्ट करते हैं, जीवी कहलाते हैं । ये परजीवी मानव के मित्र कहे ा सकते हैं । इस समय वैज्ञानिक नये प्रभावशाली जीवियों की खोज में लगे हैं ।

शोध - अध्ययनों से पता चलता है कि धिकतर परजीवी अपने अण्डे पोषक (होस्ट) के ीर पर या उसके अंदर देते हैं । कुछ परजीवी पत्तियों, ों या फलों पर भी अण्डे देते हैं, जो पोषी के शरीर पहुँच जाते हैं । शरीर के अंदर अण्डों से लार्वे ते हैं । ये लार्वे पोषी के भोजन पर ही निर्भर रहते । कुछ लार्वे इतने बड़े हो जाते हैं, जिनके कारण षक ही नष्ट हो जाता है । लार्वे के बाद परजीवी स्क बन जाता है और फिर अपने अण्डे पोषक के ीर में पहुँचा देता है, इस प्रकार यह चक्र चलता ता है । शोध - परिणामों से अब यह संदेह नहीं ा है कि 'जैव-नियंत्रण' तकनीक हानिकारक जीवों रोकथाम में कीटनाशकों के स्थान पर सरल तथा च्छ विकल्प बन सकती है ।

अपने ही देश में तना भेदक (सिपोफैश रटुलस) को नष्ट करने के लिए ट्राइकोग्रामा ोनिकम का प्रयोग आशातीत सफल रहा है । गन्ने शल्क कीट को ब्राजील से मँगाये गये परजीवी योकाव्सीडे सिटेल) ने शल्क कीट के शरीर में -40 दिन में ही पूर्ण विकसित होकर उसे नष्ट कर या । इसी प्रकार, तना भेदक के लार्वे को परजीवी रमियोपसिया इंकरेस नष्ट करने में सफल पाये गये । नारियल की सूंडी (ओपिसेना ऐरेनोसेला) को नष्ट करने के लिए पेरासीरीला नेफानटाइटिस, ऐलायस नेफानटाइटिस व ब्रेकाइमेरिया नोसाटाई सफल रहे हैं । इन परिणामों से यह आशा बलवती होती है कि जैव-नियंत्रण तकनीकें अपनाकर हम पर्यावरण को प्रदूषित होने से कुछ हद तक बचा सकते हैं । हानिकारक कीड़ों को प्रभावशाली ढंग से नष्ट करने में समन्वित पौध-संरक्षण कार्यक्रम भी कारगर भूमिका निभा सकते हैं । इन कार्यक्रमों का मुख्य ध्येय कम से कम कीटनाशियों का उपयोग करके अधिक से अधिक लाभ देना होता है । इसके कई लाभ हैं, कम कीटनाशी रसायनों के इस्तेमाल से धन की बचत होने के साथ साथ पर्यावरण का प्रदूषण भी कम होता है । कीटनाशियों के सीमित उपयोग से भूमि में लाभदायक जीवाणुओं एवं परजीवियों की संख्या कम नहीं होती है । साथ ही, वनस्पतियों से प्राप्त प्राकृतिक जैव-नाशियों का प्रचलन भी अब बढ़ता जा रहा है, जो कि कम हानिकारक होते हैं तथा पर्यावरण को भी असंतुलित नहीं करते हैं ।

डा. गोपाल भारद्वाज
4, लाजपत कुंज,
सिविल लाइन्स, आगरा - 282002.

खंडसारी उद्योग में खांड की प्राप्ति

सल्फर खंडसारी इकाइयों में गन्ने के रस से खांड की प्रतिशत प्राप्ति अधिक लेने के लिए मैं एक बेजोड सुगम उपाय का सफलता पूर्वक सहारा लिया करता हूं ।

परम्परागत तरीके से गन्ने के रस में आवश्यकतानुसार चूना डाल कर और फिर उसमें सल्फर (गंधक) की गैस लगाकर रस की मैली फाड़ी जाती है, तथा बाद में मैल रहित रस को पका कर दाने दार

खंडसारी चीनी प्राप्त कर ली जाती है ।

सल्फर की गैस लगाने का कार्य गन्ने के रस में प्राय: उसका पी. एच. देख कर पूरा किया जाता है । पी एच को देखने के बजाय, यदि गंधक गैस लगाते हुए रस के रंग परिवर्तनों को देख कर सल्फर गैस लगाने का कार्य पूरा किया जाये, तो चीनी की प्राप्ति का परिणाम अधिक उत्साह वर्धक एवं सुगम हो जाता है । इस तरह से सल्फीटेशन की प्रक्रिया करने पर चीनी का दाना सुडौल, चौकोर, सफेद तथा चमकदार बन जाता है और प्रतिशत प्राप्ति भी सही बैठ जाती है । अत:, रस का पी एच देखने के बजाय रस का रंग देख कर सल्फर गैस प्रक्रिया करने का कार्य इन उद्योगों में लगे अकुशल या अनपढ़ व्यक्तियों के लिए भी सुगम हो जाता है, क्योंकि शुरू में रस का रंग गहरा पीला होने लग जाता है, बाद में यही रंग हल्का हो जाता है । तभी सल्फीटेशन में गैस लगाने की प्रक्रिया को रोक दिया जाता है ।

के. सी. जैन
व्यापार मंडल
बाजार कोट, अमरोहा - 244221 (उ.प्र.)

जीवाणु खाद

राजेन्द्र कृषि विश्व विद्यालय, पूसा (बिहार) के वनस्पति एवं पौधा कार्मिकी विभाग के वैज्ञानिकों ने अपने शोध कार्यो के दौरान धान की फ़सल के लिए एक नवीनतम जीवाणु खाद, ''नील हरित शैवाल'' की खोज की है । सच पूछिए तो इस आविष्कार ने बिहार के कृषि जगत में एक नयी क्रांति ला दी है । वैसे, देश के अन्य कृषि विश्वविद्यालयों में वर्षो पूर्व से इस दिशा में कार्य चल रहा है । बिहार के लिए यह सर्वथा नयी चीज है । ज्ञात हो कि इस खाद में वायुमंडल से सीधे नाइट्रोजन खींचकर पौधे को आपूर्ति करने की जादुई क्षमता है ।

संस्थान के मुख्य वैज्ञानिक, डा. आर. एस शर्मा के अनुसार जीवाणु खाद ऐसी खाद है वायुमंडल से ऑक्सीजन खींचकर धान के पौधों दे देती है । इतना ही नहीं, यह धान की उपज बढ़ा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । किसानों के लि आविष्कृत यह खाद सबसे सस्ती और सुगम भी है ऐसे में जब रासायनिक खादों की कीमतें दिनों-दि बढ़ती जा रही हैं, जीवाणु खाद का महत्व बहुत ब गया है । कहते हैं, नील हरित शैवाल (एग्रीकल्चर की 800 प्रजातियां पायी जाती हैं । इनमें से केव 76 ही धान की फसल के लिए लाभकारी हैं । इ 76 प्रजातियों में पांच प्रकार के शैवालों को वैज्ञानिव ने बिहार की मिट्टी के लिए सबसे उपयुक्त पाया है

वैज्ञानिकों के अनुसार इस एग्रीकल्चर व स्वयं किसान भी तैयार कर सकते हैं । इसकी तकनीक वैज्ञानिकों ने अच्छी तरह स्थापित कर ली है । ज्ञा हो कि गर्मी के मौसम में, मार्च से जून तक का समय शैवाल उत्पादन के लिए उपयुक्त होता है । खेतों में इस खाद के प्रयोग करने की मात्रा का हिसाब 1 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर तय किया गया है । भार सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा बिहार के तीन स्थान (पूसा, पटना और सबौर) में एग्रीकल्चर के वृह उत्पादन हेतु राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा क स्वीकृति मिल गयी है । जीवाणुखाद का प्रयो रासायनिक खादों से बहुत अच्छा है क्योंकि य पर्यावरण को रासायनिक खादों की तरह प्रदूषित नह करती । इसके प्रयोग से फसलों की पैदावार ब जाएगी, इसमें कोई दो मत नहीं ।

प्रो. सीताराम सिंह पंकज
अध्यक्ष, जंतुविज्ञान विभाग
के. एस. आर. कॉलेज, सरायरंजन
समस्तीपुर (बिहार) - 848127

क्या हिमालय उठ रहा है ?

भारतीय उप-महाद्वीप के उत्तर में स्थित फैमंडित हिमालय पर्वतमालाएं प्राचीन काल से ही नुष्यों के आकर्षण का केन्द्र रही हैं । उत्तर-पश्चिम पामीर की गाँठ से प्रारंभ होकर भारत के उत्तरी एवं त्तरपूर्वी राज्यों से होती हुई पूर्व में बर्मा तक लगभग 500 कि.मी. की लम्बाई और 250 से 300 कि.मी. ो चौड़ाई में विस्तृत यह पर्वतमाला अपनी संरचना ो विविधता और उत्थान प्रक्रिया की जटिलता के ारण वैज्ञानिकों एवं भूगर्भवेत्ताओं के समक्ष एक नौती बनी हुई है ।

हिमालय की उत्पति अपने आप में एक चक विषय है । संसार का सबसे ऊंचा यह पर्वत, सी समय टैथिस सागर के गर्भ में विलीन था । य्यजीव महाकल्प (लगभग 8 करोड़ वर्ष पूर्व) तक थेस सागर हिमालय को अपने गर्भ में समाये रहा । पुरान्त चार विभिन्न भू-हलचलों के परिणाम स्वरूप मालय की उत्पत्ति हुई । ये भू-हलचल क्रमश: ुली, 7 करोड़ वर्ष पूर्व क्रिटेशियस काल में, दूसरी करोड़ वर्ष पूर्व इयोसीन काल में, तीसरी 1.5 करोड़ र्ष पूर्व मायोसीन काल में, तथा अंतिम लगभग 70 ाख वर्ष पूर्व प्लायोसीन काल में सम्पन्न हुई ।

यहाँ एक मौलिक प्रश्न उठता है कि हिमालय ा ऊपर उठना या निर्माण प्रक्रिया वास्तव में सम्पन्न चुकी है. अथवा अब भी चल रही है ? हिमालय ेश की नदियाँ अभी अपनी युवावस्था में हैं, जो पनी घाटियों को तेजी से गहरा कर रही हैं । फिर, मालय के पर्वतीय क्षेत्रों में समय-समय पर होने ले भूकम्प, भू-क्षरण एवं अन्य विध्वंसकारी घटनाएँ ा बात का प्रमाण हैं कि ऊपर से अडिग एवं निश्चल खने बाला हिमालय अभी भी अन्दर ही अन्दर त्यन्त सक्रिय है । स्पष्ट है, हिमालय-निर्माण की क्रिया अभी पूर्णरूपेण समाप्त नहीं हुई है । इसके र उठने का क्रम निरन्तर जारी है ।

भू-वैज्ञानिकों के अनुसार हिमालय प्रतिवर्ष 2 इंच की दर से ऊपर उठ रहा है । राष्ट्रीय भू-भौतिक अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद के वैज्ञानिकों के अनुसार प्रतिवर्ष हिमालय 1 से 4.5 इंच ऊपर उठ रहा है । अमेरिकी भूगर्भ वेत्ताओं के अनुसार हिमालय प्रतिवर्ष 2 से 10 इंच की दर से ऊपर उठ रहा है ।

अब प्रश्न उठता है कि अभी भी हिमालय के ऊपर उठने का क्रम क्यों जारी है ? आखिर कौन-सी शक्तियाँ हैं जो इसे अब भी ऊपर उठा रही हैं ? यों तो पर्वत निर्माण एक दीर्घकालिक घटना है, तथापि भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार हिमालय के ऊपर उठने का मुख्य कारण है भूसन्तुलन में अव्यवस्था । भू-सन्तुलन की दृष्टि से हिमालय प्रदेश अभी तक अपने आप को सन्तुलित नहीं कर पाया है । भूगर्भ में एक ऐसा तल है जिस पर ऊँचे उठे भाग तथा नीचे धँसे हुए भागों का दबाब एक समान होता है । इस तल को हम भू-सन्तुलन तल कहते हैं । इस तल के ऊपर सभी भागों की चट्टानों का दबाव बराबर या एक समान पड़ता है, चाहे कोई भाग कितना ही ऊँचा क्यों न हो और उसकी बनावट कैसी भी क्यों न हो । भू-सन्तुलन के सिद्धान्त के अनुसार जो भाग जितना ऊँचा होता है, उसका घनत्व उतना ही कम, तथा जो भाग जितना नीचा होता है उसका घनत्व उतना ही अधिक होता है, जिससे दोनों भागों का दबाव भू-सन्तुलन तल पर समान हो जाता है । अत:, किसी क्षेत्र के ऊपर जब किसी प्रकार निक्षेपण अथवा लावा के उद्‌गार से दबाव बढ़ जाता है या बर्फ पिघलने अथवा अपरदन के फलस्वरूप दबाव कम हो जाता है तो सन्तुलन भंग हो जाता है । दूसरे शब्दों में, धरातल के ऊपर होने बाले अपरदन और निक्षेपण के कारण भू-सन्तुलन की दशा स्थिर नहीं रह पाती है । धरातल के जिस भाग में अनाच्छादन की क्रिया तीव्र होती है, वहाँ भूमि कट-छटकर नीची हो जाती है और भू-सन्तुलन तल पर दबाव घटता जाता है, परन्तु जिस भाग में निक्षेपण होता है, दबाव बढ़ता जाता है । अन्तत:, दो भिन्न भूभागों के बीच सन्तुलन की दशा बिगड़ जाती है । ऐसी अवस्था में अपरदित

भूभाग ऊपर उठता है और निक्षेप बाला भूभाग नीचे धँसता है। अत:, साम्यावस्था के लिए भूगर्भ में लावा अथवा मैगमा भार परिवर्तन के फलस्वरूप इधर-उधर हटता है। इस प्रकार, पुन: दोनों भू-दृश्यों के बीच साम्यावस्था स्थापित हो जाती है।

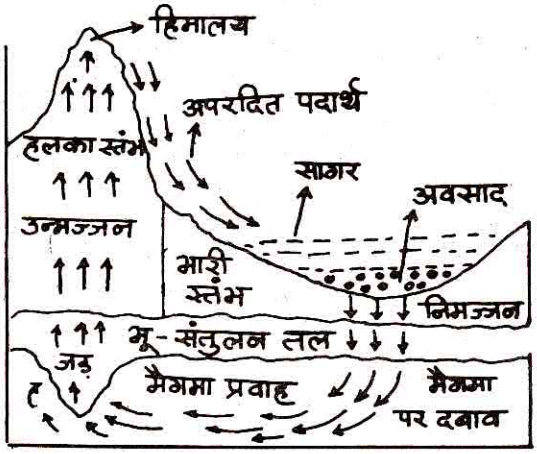

इन उपरोक्त प्रक्रियाओं से प्रभावित होकर ही हिमालय पर्वत अभी भी निरन्तर ऊपर उठ रहा है। हिमालय की नदियाँ अभी भी अपनी युवावस्था में हैं तथा यह अपघर्षण, सन्निघर्षण, संक्षारण, अपवाहन तथा जलीय दाब क्रिया द्वारा तीव्र गति सें घाटियों का अपरदन कर रही हैं। इसी तरह, विघटन, अपघटन, पिंड-विच्छेदन, दानेदार विच्छेदन, पल्लवीकरण, बर्फ, वायु और रासायनिक अपक्षय यथा ऑक्सीकरण, कार्बोनेटीकरण, जलयोजन आदि क्रियाओं के द्वारा भी हिमालय प्रदेश की शिलाओं का तीव्र गति से विखण्ड हो रहा है। अपरदन के उपरान्त प्राप्त मलवा परिवह के विभिन्न प्रक्रमों के द्वारा निकटवर्ती निम्न जली भागों, बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में गिरक जमा होता रहता है। इन जलीय भागों में मलवों निरन्तर अवसादन के कारण सागरीय तली के नी भू-सन्तुलन तल पर दबाव बढ़ता है, जबकि अपरद के कारण पर्वतीय भागों के नीचे भू-सन्तुलन तल प दबाव घट रहा है। इस प्रकार, भू-सन्तुलन तल प दाब में परिवर्तन के कारण भू-सन्तुलन बिगड़ जात है। अस्तु, सन्तुलन स्थापित करने के लिए सागरतर के नीचे स्थित मैगमा का क्षैतिज प्रवाह हिमालय व जड़ की ओर जाता है। यह मैगमा हिमालय की ज को धक्का देता है। परिणाम स्वरूप हिमालय ऊप उठ रहा है। इसे हम चित्र के द्वारा भी आसानी समझ सकते हैं।

हिमालय के ऊपर उठने की प्रक्रिया तब तव चलती रहेगी, जब तक कि यह क्षेत्र पूर्णरूपेण सन्तुल की दशा न प्राप्त कर ले। सिर्फ हिमालय ही नह विश्व की तमाम नवीन मोढ़दार पर्वतमालाएं जह उपरोक्त दशाएं उपलब्ध हैं, निरन्तर ऊपर उठ रही तथा भूगर्भिक हलचलों से प्रभावित हैं।

धनंजय आचार
व्याख्याता, भूगोल विभाग
सत्यरूपा महाविद्यालय, राजाबाजार, पटना - 14

* * *

कुछ फूल कुछ कांटे

महोदय,

मुझे 'वैज्ञानिक' के अप्रैल - जून 1991 अंक में प्रकाशित लेख ''अनुवांशिक अभियांत्रिकी और नव-कल्पित मानव'' तथा ''कैट-स्कैनर'' बहुत ही ज्ञानप्रद तथा अच्छा लगे। मैं आशा करता हूँ कि आगे भी ऐसे लेख प्रकाशित होते रहेंगे।

मैं यह अनुरोध करता हूँ कि मेरी तरफ से उक्त लेखों के लेखक डा. वासुदेव प्रसाद यादव तथा बालकृष्ण काबरा ''एतेश'' को बधाई दें।

शुभंकर मजुमदार
इस्लामपूर रोड, मुजफ्फरपुर - 842001

* * *

''वैज्ञानिक'' के अक्टूबर - दिसम्बर 1990 एवं जनवरी - मार्च 1991 के अंकों को देखकर मंत्रमुग्ध रह गया। अभी भी कुछ लोगों की धारणा है, कि वैज्ञानिक अभिव्यक्ति बिना अंग्रेजी भाषा के सम्भव नहीं, परन्तु इस पत्रिका को पढ़कर उनका भ्रमजाल अवश्यमेव खण्डित हो जायेगा।

भाषा की सरलता, स्पष्ट विश्लेषण, आकर्षक साज-सज्जा परिषद की शालीन, परिष्कृत विचारधारा को प्रदर्शित करता है। सराहनीय प्रकाशन के लिए ''वैज्ञानिक'' परिवार को हार्दिक बधाई।

नर्मदेश्वर प्रसाद
वरिष्ठ विज्ञान शिक्षक
झींकपानी, सिंहभूम (बिहार) - 833 215.

* * *

इस बार के अंक में मुझे जीव विज्ञान संबंधी सामग्री ही बहुत अधिक लगी है, जबकि पिछले अंक में भौतिक विज्ञान के बारे में सामग्री का अभाव था। इस बारे में मेरा सुझाव यही है कि आप कृपया लेख इस प्रकार प्रकाशित करें कि एक ही अंक में विज्ञान वर्ग के प्रत्येक विषय के छात्र को लाभ पहुँचे। जिस प्रकार आपने पिछले दो अंकों में लेखों का बंटवारा किया है यह गलत है, क्योंकि इससे एक अंक से सिर्फ विज्ञान के एक विशेष वर्ग का छात्र ही लाभान्वित होता है। आशा है आप आगे से अपने लेखों को इस प्रकार छापेंगे कि पत्रिका अधिक रोचक बन जाएगी।

हरिकिशन ताम्बिया
जयपुर - 302 015.

* * *

''धमनी काठिन्य का वास्तविक कारण'' (''वैज्ञानिक'' अप्रैल - जून 1991) में लेखक, डा. केशव कुमार ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है। लेखक की इस बात से मैं सहमत हूँ कि भिन्न -भिन्न दाब पर कार्य करने वाली शिरा, फुफ्फुस-धमनी और महाधमनी की दीवाल की पर्त्त में वसा का घनत्व भिन्न-भिन्न होता है। ज्यादा दाब सहने वाली नलिकाओं में ज्यादा घनत्व वाली वसा की दीवाल होना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। साधारणतया प्रकृति कार्य के अनुसार, परिस्थितियों के अनुसार जिनमें उन्हें कार्य करना है, संरचना को अभिकल्पित, संरचित करती है। इस प्रकार, महाधमनी में जिसे अधिक रक्त दाब पर कार्य करना है, उसकी दीवाल ज्यादा मजबूत होना आवश्यक है जिससे वह बिना फटे इस दाब को सहन कर सके। शिरा में जब दाब कम होता है तो संरचना भी उसी के अनुसार कमजोर हो जाती है।

धमनी के स्थान पर शिरा का आरोपण चिकित्सा की दृष्टि से भले ही उचित हो, संरचना की दृष्टि से सही नहीं कहा जा सकता। शिरा के आरोपण को या तो शरीर रक्तदाब के कारण फट कर नामंजूर कर देगा या फिर उसमें ऐसे परिवर्तन लायेगा कि वह शिरा धमनी वाली संरचना में परिवर्तित हो जाए। लेखक के अनुसार ऐसा पाया गया है। इसका अर्थ है कि धमनी पाये जाने वाले स्थानों में, स्थानीय संरचनाएं और परिस्थितियां इस प्रकार होनी चाहिए कि वे रक्त से अपनी आवश्यक्ता अनुसार वसा को प्राप्त कर सकें और आवश्यक्ता पड़ने पर शिरा को धमनी की मजबूती दे सकें। संभवतय: यही बात

फुफ्फुस-धमनी और शिरा के स्थान पर धमनी के प्रयोग करने पर भी होगी, जहाँ धमनी की प्रारंभिक संरचना, समय के साथ बदल कर शिरा की संरचना में आ जायेगी। यहाँ चयापचय की प्रक्रिया धमनी वाले स्थानों से भिन्न प्रकार की होनी चाहिए।

मेरे विचार में धमनी काठिन्य का कारण रक्त दाब मात्र नहीं हो सकता। यह वहाँ उपलब्ध परिस्थितियों का एक अंश मात्र है। धमनी अपनी स्थिति जन्य परिस्थितियों के कारण जिसमें वहाँ उपलब्ध अन्य सहयोगी संरचनाएं और उनके कार्य हैं, इस प्रकार आचरण करती है कि वह अपनी संरचना आवश्यकता के अनुसार रक्त से वसा शोषित कर लेती है। इस प्रकार, आवश्यक वसा को शोषित कर के अपनी संरचना को मजबूत बनाये रखती है। चयापचय की क्रिया भी इस संतुलन को बनाये रखती है।

उन परिस्थितियों में जब धमनी में प्रयुक्त वसा, रक्त में पर्याप्त से ज्यादा मात्रा में उपलब्ध होती है, तो स्थानीय रूप से धमनी वाले स्थानों में वसा ग्रहण करने और चयापचय की क्रिया को यह परिस्थिति प्रभावित करती है। रक्त में वसा की सान्द्रता ज्यादा होने से, हो सकता है कि धमनी द्वारा शोषित वसा की मात्रा में वृद्धि होने लगे। इस प्रकार, अतिरिक्त वसा की उपलब्धि से धमनी की दीवालें मोटी हो जाती हैं, जैसे कि उन्हें कहीं ज्यादा ऊंचे रक्त दाब पर कार्य करना हो। मोटी दीवालों के कारण रक्त प्रवाह के लिए उपलब्ध अनुप्रस्थ परिच्छेद के क्षेत्रफल में कमी आ जाती है और रक्त दाब बढ़ जाता है। इस प्रकार, धमनी काठिन्य के लिए परिस्थितियाँ धीमेधीमे अनुकूल होने लगती हैं। इतना निश्चित है कि यह प्रक्रिया बहुत धीमे-धीमे प्रारंभ होती है और इस कारण इसे बदलने की प्रक्रिया भी बहुत धीमी ही हो सकती है।

मेरे विचार में प्रारंभिक रूप में वसा की प्रचुर मात्रा, स्थानीय रूप से धमनी वाले हिस्सों में वसा को तेजी से ग्रहण करने की प्रक्रिया की शुरूआत करती है। बाद में यह प्रवृत्ति वसा भक्षण की भी हो सकती है। इतना निश्चित है कि उसके बाद वसा चयापचय की प्रक्रियाँ में भी परिवर्तन हो जाता है।

मेरे विचार में धमनी काठिन्य से बचने का उपाय यही है कि रक्त में उस प्रकार की वसा की मात्रा घटा दी जाए, जिस प्रकार की वसा धमनी संरचना की बनावट में सहायक होती है। बचपन से ही यदि वसा की मात्रा पर नियंत्रण रखा जाए तो शायद धमनी काठिन्य की प्रक्रिया प्रारंभ ही न हो।

राजकुमार जैन
डी-17/6 डी आर डी ओ काम्पलेक्स,
सी.वी. रमन नगर, बैंगलूर - 560 093.

* * *

लेखकों से निवेदन

- ''वेज्ञानिक'' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखे :
- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाए,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिए छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अन्त में संलग्न कर दें, पाण्डुलिपि में मूलपाठ के साथ उसी पृष्ठ पर चित्र न बनाएं,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जाएंगी।

- संपादक

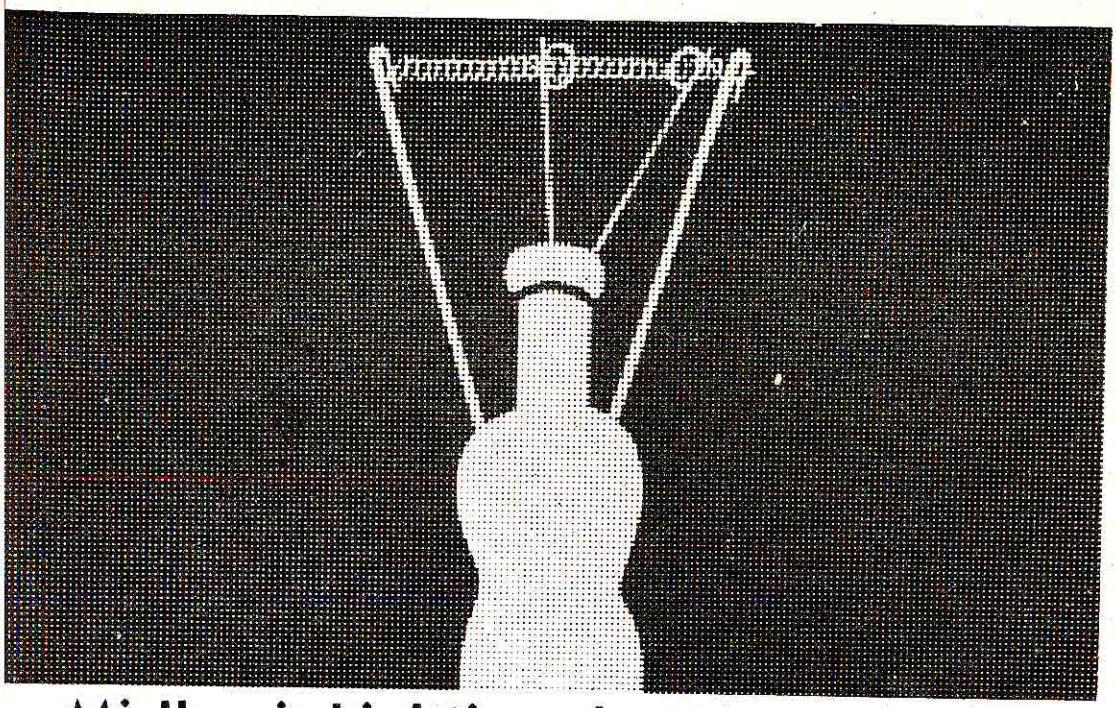

Midhani. Lighting the path to self-reliance in special metals and alloys.

Midhani is India's first and only special alloys plant manufacturing the entire range of special metals and alloys needed by various industries.

For instance, molybdenum, tungsten and high purity nickel for the lamp industry.

The basic production technology has been acquired from reputed foreign organisations like Creusot-Loire and Pechiney-Ugine-Kuhlmann of France and Krupp Kloeckner A of West Germany. Midhani also has the latest equipment and quality control facilities to ensure that all Midhani alloys meet international standards in quality and performance.

Some of the unique production facilities are the powder metallurgy shop for compacting, sintering, swaging and wire drawing of molybdenum and tungsten products, sophisticated melting and refining furnaces, precision forging, rolling and wire drawing equipment and a central quality control laboratory.

Midhani's product range includes iron, nickel and cobalt based superalloys, special purpose steels, titanium and titanum alloys, electrical and electronic alloys including electrical resistance alloys and powder metallurgy products.

MIDHANI

Mishra Dhatu Nigam Limited

(A Government of India Enterprise)

Kanchanbagh Hyderabad 500 258

Sista's/Midhani/153.84

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डा. जनार्दन स्वरूप द्वारा संपादित तथा डा. शिव प्रकाश गर्ग द्वारा अतुल्य प्रिंट मेकर्स,अंधेरी, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित.

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नई दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा/विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

NUCLEAR POWER CORPORATION

STEPPING UP POWER GENERATION FOR GENERATIONS TO COME

Nuclear Energy from the unlimited energy source. Environmentally clean and safe. Indigenously developed and totally self-reliant, to meet the growing energy demand for a better quality of life for our increasing millions.

NPC committed to serving the nation, utilising India's vast nuclear resources for generation of power for generations to come.

NUCLEAR POWER CORPORATION
(A Govt. of India Enterprise)

16th & 20th floor, World Trade Centre 1,
Cuffe Parade, Bombay 400 005.

NPC. Fuelling a powerful future.

CONTOUR ADS-NPC-4